ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

जून २०१७

Date of Printing = 05-6-17
प्रकाशन दिनांक= 05-6-17

वर्ष ४६ : अङ्क ८
दयानन्दाब्द : १९३
विक्रम-संवत् : ज्येष्ठ-आषाढ़, २०७४
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११८

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य
प्रकाशक व सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओम प्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु०
वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस लेख में

- ❑ शास्त्रार्थ २
- ❑ वेदोपदेश ३
- ❑ केनोपनिषद् का सन्देश ५
- ❑ धर्म, तलाक और राजनीति ७
- ❑ आतंकवाद का भयानक रूप ९
- ❑ मनुष्य जीवन के उत्थान.... १३
- ❑ पाप से कैसे बचें १५
- ❑ रोमा रौलां की दृष्टि में.... १८
- ❑ निष्काम भाव से..... २०
- ❑ संत रविदास और इस्लाम २१
- ❑ भारत में इतने गद्दार क्यों? २३
- ❑ काशी में छा गयी उदासी २५

विशेष : दयानन्द सन्देश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की पूर्णतया सहमति आवश्यक नहीं है। अतः किसी भी चर्चा/परिचर्चा एवं वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

शास्त्रार्थ

विषय : क्या ईश्वर का अवतार होता है?
प्रधान : श्री मास्टर बोधराज जी
दिनांक : 20, 21 दिसम्बर सन् 1919 (दिन के दो बजे)
शास्थार्थ कर्ता : शास्त्रार्थ महारथी श्री ठाकुर अमर सिंह जी 'आर्य पथिक' वर्तमान महात्मा अमर स्वामी जी महाराज एवं सनातन धर्मियों की ओर से : श्री पं. गोकुल चन्द जी शास्त्री

मई २०१७ से आगे

आर्यसमाज में जब शास्त्रार्थों का युग था, तब गैर आर्यसमाजी लोग आर्यसमाज में आते व बड़े चाव से हमारी बात सुनते थे। इसी बात को ध्यान में रखकर हमारे विद्वानों के शास्त्रार्थों में से एक शास्त्रार्थ का प्रसंग यहाँ उद्धृत किया जा रहा है।

-सम्पादक

(पदम् पुराण उत्तर खण्ड अध्याय 150 श्लोक 1 से 30 तक) पदम् पुराण उत्तर खण्ड अध्याय 16 श्लोक, 54 से 72 तक) एवं इसी प्रकार (शिव पुराण रूद्र संहिता अध्याय 3-4) में नारद के शाप से विष्णु का रामावतार होना बताया गया है।

श्री शास्त्री जी!

आपका कहना है कि भगवान का अवतार धर्म की रक्षा तथा अधर्म का विनाश करने के लिए होता है। यह आपके माने हुए पुराणों से सिद्ध नहीं होता है।

पुराणों से तो यह भी सिद्ध होता है कि पाप कर्मों का फल भोगने के लिए विष्णु के मछली आदि की योनियों में जन्म हुए।

देखिये शास्त्री जी महाराज! और नोट कीजिये। गरुड़ पुराण पूर्व खण्ड आचार काण्ड अध्याय 113 श्लोक 15 में

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्ड भाण्डोदरे।
विष्णुर्येन दशावतार गहने, क्षिप्तो महासंकटे।।
रूद्रो येन कलापपाणि पुटके भिक्षाटनं कारितः
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे।
पण्डित जी।

मेरे पास सैंकड़ों प्रमाण पुराण आदि ग्रन्थों के ऐसे हैं। जिनसे सिद्ध होता है कि, जिन-जिन को आप भगवान-परमेश्वर का अवतार मानते हैं, वह सब कर्म फल भोगने वाले जीव ही थे। परमेश्वर के अवतार नहीं।

बाल्मीकिय रामायण में श्री राम जी का वचन भी कहा हुआ यही सिद्ध करता है। सुनिये 7

न मद्विधो दुष्कृत कर्मकारी, मन्ये द्वितीयोऽस्ति वसुन्धरायाम्।
शोकेन शोकोहि परम्पराया मामेति भिन्दन् हृदयं मनश्च।।3।।
पूर्वं मया नूनमभीप्सितानि, पापानि कर्माण्यसंत्कृत कृतानि।
तत्रायमद्यापततो विपाको दुःखेत दुःखं यदहं विशामि।।4।।

बालमीकीय रामायण अरण्यकाण्ड सर्ग ६३ श्लोक 3, 4,

श्री राम जी कहते हैं कि - मैं मानता हूं कि मेरे समान पाप कर्म करने वाला दूसरा मनुष्य इस भूमि पर नहीं है, शोक से शोक परम्परा से हृदय तथा मन को भेदन करता हुआ मुझको प्राप्त होता है, निश्चय ही मैंने पूर्व जन्म में, बहुत पाप बार-बार किये हैं। उन्हीं का फल मुझको यह है कि दुख पर दुख प्राप्त हो रहा है।

योग दर्शन में परमेश्वर का लक्षण इस प्रकार बताया है।

(क्रमशः)

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। महर्षि दयानन्द

परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिः। **अग्निः = ईश्वरः भौतिकोऽग्निः देवता।** स्वराङ् जगती छन्दः।। निषादः स्वरः।।

यज्ञशालादिगृहाणि कीदृशानि रचनीयानीत्युपदिश्यते।।

यज्ञशाला आदि घर कैसे बनाने चाहिए, इस विषय का उपदेश किया जाता है।

ओ३म्

भूताय॑ त्वा नारा॑तये स्व॒रभि॒विख्ये॑षं दृꣳह॑न्तां दुर्य्याः॑ पृथि॒व्यामु॒र्व्व॒न्तरि॑क्ष॒मन्वे॑मि।
पृथि॒व्यास्त्वा नाभौ॑ साद॒या॒म्यदि॑त्याऽउपस्थेऽग्ने॑ ह॒व्यꣳर॑क्ष ।।

यजु० १-११।।

पदार्थः (भूताय) उत्पन्नानां प्राणिनां सुखाय **(त्वा)** तं कृषिशिल्पादिसाधनम् **(न)** निषेधार्थे **(अरातये)** रातिर्दानं न विद्यते यस्मिन् तस्मै शत्रवे बहुदानकरणार्थं दारिद्र्यविनाशाय वा **(स्वः)** सुखमुदकं वा। **स्वरिति सुखनामसु पठितम्।। निघं० ३।६।। उदकनामसु च।। १ । १२ ।। (अभिविख्येषम)** अभितः= सर्वतो विविधं पश्येयम्। **अत्राभिव्यो रुपपदे चक्षिङ् इत्यस्याशीर्लिङ्यार्धधातुकसंज्ञामाश्रित्य ख्याञ् आदेशः। लिङ्याशिष्यङित्यङ् सार्वधातुकसंज्ञाश्रित्य च या इत्यस्य इय् आदेश। सकारलोपाभाव इति। (दृꣳशः हन्ताम्)** दृंहन्तां वर्धयन्ताम्। **अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः (दुर्य्याः)** गृहाणि। **दुर्य्या इति गृहनामसु पठितम्।। निघं ३ । ४। (पृथिव्याम्)** विस्तृतायां भूमौ **(उरु)** बहु **(अन्तरिक्षम्)** अवकाशं सुखेन निवासार्थम् **(अनु)** क्रियार्थे **(एमि)** प्राप्नोमि **(पृथिव्याः)** शद्धाया विस्तृताया भूमेः **(त्वा)** तं पूर्वोक्तं यज्ञम् **(नाभौ)** मध्ये **(सादयामि)** स्थापयामि **(अदित्याः)** विज्ञानदीप्तेर्वेदवाचः सकाशादन्तरिक्षे मेघमंडलस्य मध्ये, **अदितिद्यौरदितिरन्तरिक्षमिति मंत्रप्रामाण्यात्।। ऋ. १ । ८ । ६ ।१० ।। अदितिरिति वाङ्नामसु पठितम्।। निघं० १ । ११ । पदनामसु च।। निघं० ४ । १ ।। (उपस्थे)** समीपे **(अग्ने)** परमेश्वर! **(हव्यम्)** दातुं ग्रहीतुं योग्यं क्रियाकौशलं सुखं वा **(रक्ष)** पालय।। अयं मंत्रः श० १ । १ । २ । २०-२३ व्याख्यातः ।। ११ ।।

प्रमाणार्थ (स्वः) 'स्वः' शब्द निघं० (३ । ६) में सुख नामों में पढ़ा है और निघं० (१।१२) में उदक (जल) नामों में भी पढ़ा है। (अभिविख्येषम्) यहाँ अभि-वि के उपपद रहते 'चक्षिङ्' धातु को आशीर्लिङ् में आर्धधातुक संज्ञा होने से 'ख्याञ्' आदेश है और 'लिङ्याशिष्यङ्' से अङ, पुनः सार्वधातुक संज्ञा के आश्रय से 'या' को 'इय' हुआ एवं सकार का लोप नहीं है। (दृंहन्ताम्) यहाँ अन्तर्भावित ण्यर्थ है (दुर्य्याः) 'दुर्य्याः' शब्द निघं० (३ । ४) में गृहनामों में पढ़ा है। (अदित्याः) 'अदिति' शब्द ऋ० (१।८।६।१०) में द्यौ और अन्तरिक्ष अर्थ में आया है। निघं० (१।११) में 'अदिति' शब्द वाणी के नामों में पढ़ा है। निघं० (४।१) में 'अदिति' शब्द पदनामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । १ । २ । २०-२३) में की गई है। १ । ११ ।।

सपदार्थान्वयः अहं यं भूताय उत्पन्नानां प्राणिनां सुखाय **अरातये=अदानाय** रातिः= दानं न विद्यते यस्मिन्

तस्मै शत्रवे, बहुदानकरणार्थं, दारिद्र्यविनाशाय वा **अदित्याः** विज्ञानदीप्तेर्वेदवाचः सकाशादन्तरिक्षे मेघमण्डलस्य मध्ये **उपस्थे** समीपे **यज्ञं सादयामि** स्थापयामि (**त्वा**)= **तं** (तं) कृषिशिल्पादिसाधिनं (न) **कदाचिन्न त्यजामि।**

हे विद्वांसो! भवन्तः पृथिव्यां विस्तृतायां भूमौ **दुर्य्याः** गृहाणि **दृंहन्तां=वर्धयन्ताम्। अहं पृथिव्याः** शुद्धाया विस्तृताया भूमेः **नाभौ=मध्ये, येषु गृहेषु स्वः** सुखमुदकं वा **अभिविख्येषम्** अभितः सर्वतो विविधं पश्येयम्, **यस्यां पृथिव्यां** विस्तृतायां भूमौ **उरु** बहु **अन्तरिक्षम्** अवकाशं सुखेन निवासार्थं **च, अन्वेमि** प्राप्नोमि।

हे अग्ने=जगदीश्वर! परमेश्वर! **त्वमस्माकं हव्यं** दातुं ग्रहीतुं योग्यं क्रियाकौशलं सुखं वा **सर्वदा रक्ष** पालय। **इत्येकोऽन्वयः।।**

भाषार्थ मैं जिस यज्ञ को **(भूताय)** उत्पन्न प्राणियों के सुख के लिये **(अरातये)** शत्रु के लिये, बहुत दान करने के लिए अथवा दरिद्रता के विनाश के लिये **(अदित्याः)** विज्ञान के दीपक वेद की वाणी से आकाश में मेघमण्डल के **(उपस्थे)** मध्य में **(सादयामि)** स्थापित करूँ **(त्वा)** उस कृषि और शिल्प आदि के साधक यज्ञ को **(न)** कभी न छोड़ूँ।

हे विद्वानो! आप **(पृथिव्याम्)** इस विस्तृत भूमि पर **(दुर्याः)** घरों को **(दृंहन्ताम्)** बढ़ावें। मैं **(पृथिव्याः)** शुद्ध विस्तृत भूमि के **(नाभौ)** मध्य में जिन घरों में **(स्वः)** सुख एवं जल आदि सुख के साधन हों, उन्हें **(अभिविख्येषम्)** सब ओर देखूँ, और जिस **(पृथिव्याम्)** विस्तृत भूमि पर **(उरु)** बहुत **(अन्तरिक्षम्)** सुख से निवास के लिये अवकाश हो, उसे **(अन्वेमि)** प्राप्त करूँ।

हे **(अग्ने)** जगत् के स्वामी परमेश्वर! आप हमारे **(हव्यम्)** परस्पर लेने-देने योग्य क्रियाकौशल वा सुख की सदा **(रक्ष)** रक्षा करो।। यह मन्त्र का पहला अन्वय है।

अथ द्वितीयमन्वयमाह हे अग्ने=जगदीश्वर! अहं भूताय उत्पन्नानां प्राणिनां सुखाय **अरातये** रातिः=दानं न विद्यते यस्मिन् तस्मै शत्रवे बहुदानकरणार्थं, दारिद्र्यविनाशाय वा **पृथिव्याः** शुद्धाया विस्तृताया भूमेः **नाभौ** मध्ये ईश्वरत्वो **पास्यत्वाभ्यां स्वः=सुखरूपं** सुखमुदकं वा **(त्वा)=त्वामभिविख्येषम्=प्रकाशयामि** अभितः सर्वतो विविधं पश्येयम्।

भवत्कपयेमेऽस्माकं दुर्याः=गृहादयः पदार्थास्तत्रस्था मनुष्यादयः प्राणिनो दृंहन्ताम्=नित्यं वर्धन्ताम्।

अहं पृथिव्यां विस्तृतायां भूमौ **उरु** बहु **अन्तरिक्षम्=व्यापकम्** अवकाशं सुखेन निवासार्थम् **उपस्थे** समीपे **त्वा=त्वामन्वेमि=नित्यं प्राप्नोमि (न) न कदाचित् त्वा=त्वां त्यजामि। त्वमिदमस्माकं हव्यं** दातुं ग्रहीतुं योग्यं क्रियाकौशलं सुखं वा **सर्वदा रक्ष** पालय।। **इति द्वितीयः।।**

दूसरा अन्वय हे **(अग्ने)** जगदीश्वर! मैं **(भूताय)** उत्पन्न प्राणियों के सुख के लिये **(अरातये)** शत्रु के लिये, बहुत दान करने के लिए अथवा दरिद्रता के विनाश के लिए **(पृथिव्याः)** शुद्ध विस्तृत भूमि के **(नाभौ)** मध्य में ईश्वर और उपास्य होने से **(स्वः)** सुखस्वरूप एवं सुख शान्ति के निमित्त **(त्वा)** आपको **(अभिविख्येषम्)** सब ओर विविध प्रकार से देखूँ।

आपकी कृपा से ये हमारे **(दुर्याः)** गृह आदि पदार्थ और वहाँ रहने वाले मनुष्य आदि प्राणी **(दृंहन्ताम)** नित्य वृद्धि को प्राप्त हों।

मैं **(पृथिव्याम्)** विस्तृत भूमि पर **(उरु)** बहुत **(अन्तरिक्षम्)** व्यापक एवं सुख से निवास के लिए अवकाश **(उपस्थे)** में **(त्वा)** आपको **(अन्वेमि)** प्राप्त करूँ और **(त्वा)** आपको **(न)** कभी न छोड़ूं। आप हमारे इस **(हव्यम्)** परस्पर देने-लेने योग्य क्रिया कौशल वा सुख की सदा **(रक्ष)** रक्षा कीजिये। यह मन्त्र का दूसरा अन्वय है।

भावार्थ अत्र श्लेषालङ्कारः। ईश्वरेण मनुष्यं आज्ञाप्यते हे मनुष्य! अह त्वां सर्वेषां भूतानां सुखदानाय पृथिव्यां रक्षयामि।

भावार्थ इस मन्त्र में श्लेष अलंकार है। ईश्वर मनुष्य को आज्ञा देता है- हे मनुष्य! मैं तुझे सब प्राणियों को सुख देने के लिए पृथिवी पर स्थापित करता हूँ।

केनोपनिषद् का सन्देश

(उत्तरा नेरूरकर, बंगलौर, मो.- 09845058310)

दश प्रधान उपनिषदों में से केनोपनिषद् एक है। सामवेद का यह उपनिषद्, चार खण्डों में बंटा और ३४ श्लोकों वाला एक अत्यन्त छोटा सुन्दर उपनिषद् है। इसके कई वचन अनेकों सन्दर्भों में दोहराए जाते हैं। इसमें एक आलंकारिक कथा आती है, जिसका अर्थ आज पूर्णतया नहीं समझा जाता। तथापि जो भाग समझ में आता है, वह अत्यन्त सुन्दर है। इस अनमोल सन्देश को मैं यहाँ वर्णित कर रही हूँ।

कथा का सारांश इस प्रकार है-

ब्रह्म ने देवों के लिए विजय प्राप्त की। किस पर की, यह नहीं कहा गया है। इसलिए पौराणिक लोग असुरों पर विजय मान लेते हैं। परन्तु उपनिषद् में कहीं भी असुरों का कोई संकेत नहीं है। आगे हम जानेंगे कि किस पर विजय प्राप्त की। ब्रह्म की इस विजय के कारण सारे देव महान् हो गए। तब वे आपस में सोचने लगे कि यह विजय हमारी थी, जैसे ये महानता हमारी ही है। अब ब्रह्म क्यों न उनके मन की बात जान जाए? तो उसने देवों को सबक सिखाने की सोची। वह उनके सामने यक्षरूप में प्रकट हुआ। देवों में खलबली मच गई कि आखिर यह यक्ष है कौन। उन्होंने अग्नि से कहा कि तुम जाकर पता करो कि यह कौन है। अग्नि ने स्वीकार लिया और यक्ष के पास पहुँचा। यक्ष ने पूछा, "तुम कौन हो?" अपने को इतना प्रसिद्ध मान रहे अग्नि को इससे ठेस पहुँची। उसने तमक कर कहा, "मैं अग्नि हूँ। मैं ही जातवेदा हूँ- सभी उत्पन्न पदार्थों में स्थित हूँ।" यक्ष ने पूछा, "तुममें क्या विशेष शक्ति है?" तो अग्नि बोला, "मैं पृथिवी पर सब कुछ जला सकता हूँ।" यह सुन, यक्ष ने एक तिनका उसके सामने रख दिया और कहा, "इसे जला।" अग्नि ने पूरा बल लगाया परन्तु जला न सका। वह लज्जित होकर देवों के पास वापस पहुँचा और बोला कि मैं पता नहीं कर पाया कि वह यक्ष कौन है।

अन्य देव फिर वायु को भेजते हैं। कहानी दोहराई जाती है। वायु यक्ष को बताता है कि वह पृथिवी पर स्थित किसी भी वस्तु को उड़ा सकता है, परन्तु यक्ष के तृण को नहीं उड़ा पाता। फिर इन्द्र को भेजा जाता है। आश्चर्य! यक्ष उसके आते ही गायब हो जाता है और उसके स्थान में एक अतीव सुन्दर, सुनहरी-सी स्त्री प्रकट होती है, जो कि उमा थी। इन्द्र उत्सुकता से पूछता है, "क्या तुम जानती हो, वह यक्ष कौन था?" और इसी के साथ यह तृतीय खण्ड समाप्त हो जाता है।

चौथे खण्ड में, उमा कहती है, "वह ब्रह्म था। वास्तव में ब्रह्म की विजय के कारण ही तुम सब महान् हुए हो।" तो जाकर इन्द्र को समझ में आया कि वह यक्ष ब्रह्म था।

इस कथा में कई रहस्य छिपे हैं। पौराणिक जन तो अग्नि, वायु, आदि को इन्द्रलोक में रहने वाले देवता मानते हैं, इन्द्र को उनका राजा और उमा को शिव की पत्नी पार्वती। ऐसा मानने से पुराणों जैसी ही एक कथा सामने आती है, जिसका कोई विशेष सिर-पैर नहीं होता। वास्तव में कथा का गम्भीर अर्थ है, जैसा कि एक उपनिषद् में पाए जाने की अपेक्षा होती है। ये तथ्य क्रमवार नीचे दिए हैं।

प्रथम, **ब्रह्म की विजय**। सृष्टि के आरम्भ में प्रकृति निश्चल पड़ी हुई थी। ब्रह्म ने उसको उठाया और कई शक्तिशाली रूपों में परिवर्तित कर दिया। इनमें से मुख्य थे पञ्च महाभूत- आकाश, वायु, अग्नि, जल व पृथिवी।

इन एक-एक महाभूत में अद्भुत शक्तियाँ निहित हैं। दिव्य शक्तियों के कारण, इन भूतों को देव कहा जाता है। पर इस नाम के कारण जीवन्त नहीं हो जाते, वे तो जड़ ही रहते हैं। इन शक्तियों का और इस ब्रह्माण्ड का उद्भव ही ब्रह्म की विजय है। इसमें वह किसी से झगड़ा नहीं करता, अपितु जड़ प्रकृति की निष्क्रियता पर ही उसने विजय पाई। अब, अपनी शक्तियों को अनुभव कर, देवों में अहंकार आ गया। उन्हें लगा कि ब्रह्म क्या चीज है? हम ही तो इस ब्रह्माण्ड को चला रहे हैं! इन देवों में सबसे महान् था इन्द्र। वस्तुतः यह देवों का राजा नहीं था, अपितु जीवात्मा को ही इस नाम से इस कथा में पुकारा गया है, जैसा कि वेदों में अन्यत्र भी हम पाते हैं, जैसे-

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्य सखा।। ऋक्० १/२२/१९।।

अर्थात् हे जीवात्मन्! तू उस विष्णु का योग्य सखा है। सभी देवों में केवल वही एक चेतन है, सोच-विचार कर सकता है। इसीलिए वह अन्य देवताओं में सबसे विलक्षण है। और अन्य देवों में जो चेतनता घटाई गई है, वह वस्तुतः इन्द्र की ही है। इन्द्र ही सोचने लगता है कि इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि की और इसकी वृद्धि में प्राकृतिक शक्तियों का ही खेल है, परमात्मा जैसी शक्ति की कहाँ कोई आवश्यकता है? आज भी हम प्रायः अनेकों वैज्ञानिकों में यह प्रवृत्ति पाते हैं, जिसके कारण वे परमात्मा की सत्ता को नकारते हैं।

द्वितीय, कथा में **यक्ष का स्वरूप।** यक्ष अर्थात् ब्रह्म सर्वशक्तिमान् है। इसका यह अर्थ है कि वह प्राकृतिक देवों को निस्तेज भी कर सकता है। जहाँ उसने उनको उनकी शक्तियाँ प्रदान की हैं, वहीं वह उनको किसी भी क्षण वापस भी ले सकता है। वह प्रकृति में ऐसा उत्पात उत्पन्न कर सकता है कि जिनका किसी के पास कोई उपाय नहीं होता। जैसे, सूनामी की भयंकर लहर के सामने क्या पृथिवी, क्या पेड़- पौधे, क्या मनुष्य और क्या उसकी भवन आदि छोटी मोटी सृष्टियाँ- सभी एक विशालकाय शक्ति बहा ले जाती है। यह शक्ति परमात्मा की है, जिसके कहने पर प्रकृति नाचती है।

पुनः, प्राकृतिक देव ब्रह्म को नहीं जान सकते। यह कथा इन्द्र के बारे में इन्द्र को ही कही जा रही है। वास्तव में, ब्रह्म इन्द्र को अपनी सत्ता, अपनी शक्तियों से अवगत कराना चाहते हैं। जिस प्रकार जीवात्मा प्रकृति से घनिष्ठ रूप से संयुक्त होकर उसका भोग करता है, उससे भी घनिष्ठ सम्बन्ध उसका और ब्रह्म का है। प्रकृति के संयोग से वह इस सम्बन्ध को भूल-सा जाता है। यक्ष के समान, परमात्मा उसके सामने छुप सा जाता है। जबकि प्रकृति के सामने ब्रह्म को छुपने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि प्रकृति उसको जानने में असमर्थ है, परन्तु जीव, जो उसको जान सकता है, उससे वे प्रकृति के चोगे में छिप जाता है।

तृतीय, **उमा**। यह सुन्दर, विभिन्न आभूषणों से अलंकृत स्त्री वस्तुतः वेदवाणी है। 'उमा' की व्युत्पत्ति है- **"उमिति परमात्मानं माति प्रापयतीति उमा"** अर्थात् उ परमात्मा के नामों में से एक है और उसको मापने वाली, प्राप्त करने वाली विद्या उमा है। उसके जो अलंकार आदि हैं, वे वेद के छन्द आदि अलंकार है। वेद से अधिक सुभूषित कोई मानव ग्रन्थ नहीं है। यद्यपि ब्रह्म तो छुप गया, परन्तु उसने अपने को प्राप्त कराने के लिए एक सहायिका को छोड़ दिया। उस वेदवाणी से ही हमें उसकी सत्ता का ज्ञान होता है। और वही हमें उस तक पहुँचाती है। वही बताती है कि इस सब ब्रह्माण्ड को ब्रह्म ने ही रचा है और वही इसका संचालन कर रहा है। प्राकृतिक शक्तियों को ही इनका सूत्रधार और कर्ता-धर्ता मानना मूर्खता है और वेदवाणी के बिना हम यह मूर्खता करेंगे ही, क्योंकि ब्रह्म तो छिपा हुआ है। वेदों का ज्ञान प्राप्त कर मनुष्य परमात्मा को प्राप्त करने का मार्ग भी जान लेता है।

शेष पृष्ठ २२ पर

धर्म, तलाक और राजनीति

धर्मपाल आर्य

धर्म एक ऐसा विषय है, जिससे अन्तरात्मा का उद्धार होता है। धर्म को हमारे महापुरुषों ने अपने-२ ढंग से परिभाषित करने का प्रयास किया है। किसी ने कहा - **''दया ही धर्म का मूल है।''** किसी ने कहा - **''अहिंसा परमो धर्मः''** अहिंसा ही परम धर्म है। लेकिन धर्म की समग्र परिभाषा दर्शनकार ने कुछ इस प्रकार से दी है, जिससे सारी अन्य परिभाषाएँ दार्शनिक परिभाषा से ही प्रभावित हैं या यह कहूँ कि उन सबका मूल स्रोत धर्म की दार्शनिक परिभाषा में निहित है। **''यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धि सः धर्मः''** अर्थात् जिन सिद्धान्तों अथवा नियमों को जीवन में अपनाने व धारण करने से लौकिक और पारलौकिक सुखों की प्राप्ति हो, उसे धर्म कहते हैं। वे सिद्धान्त, वे नियम कौन से हैं, जिनके आचरण से अथवा आचरण करने से जीवन में लौकिक अभ्युदय तथा पारलौकिक निःश्रेयस की प्राप्ति होती है। धर्म आत्मा- परमात्मा से संवाद का साधन है। धर्म तोड़ने का नहीं, अपितु जोड़ने का साधन है। धर्म अवनति का नहीं, अपितु सर्वांगीण उन्नति का साधन है। धर्म हिंसा का नहीं, अपितु अहिंसा का स्रोत है। धर्म दानवता का द्वार नहीं, अपितु मानवता का सोपान है। धर्म अशान्ति का नहीं, अपितु शान्ति का और आन्तरिक क्रान्ति का सन्देशवाहक है। अभ्युदय (लौकिक) उन्नति और निःश्रेयस (पार-लौकिक) उन्नति प्राप्त करने के सूत्र (धर्म) के दस लक्षणों का महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश में उल्लेख करते हुए लिखते हैं-

''धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।''

अर्थात- धृति (धैर्य), क्षमा(सहनशीलता), दम(आन्तरिक बुराइयों को मिटाना), अस्तेय(चोरी का भाव न होना) शौच(पवित्रता), इन्द्रियनिग्रह (इन्द्रियों को वश में रखना), धी (बुद्धि पूर्वक कार्य करना), विद्या, सत्य और अक्रोध ये धर्म के दस लक्षण कहलाते हैं। जिसके जीवन में धैर्य नहीं, जिसके जीवन में क्षमा नहीं, जिसके जीवन में दम नहीं, जिसके जीवन में अस्तेय नहीं, जिसके जीवन में पवित्रता नहीं, जिसके जीवन में इन्द्रियनिग्रह नहीं, जिसके जीवन में धी नहीं, जिसके जीवन में विद्या नहीं, जिसके जीवन में सत्य नहीं और जिसके जीवन में क्रोधहीनता नहीं, तो वह राष्ट्र, वह समाज, वह जाति, वह समुदाय, वह परिवार और वह व्यक्ति उस धरा पर मानव नहीं, अपितु दानव है और आचार्य चाणक्य के अनुसार यदि कहूँ तो-

''धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः''

अर्थात् जो धर्म से हीन है, वह पशु के समान है। यदि कभी धर्म का लक्षण सतीप्रथा बनती है या बनाई जाती है, यदि धर्म का लक्षण पशुबलि बनती है या बनाई जाती है और धर्म का लक्षण तलाक बनता है या बनाया जाता है, तो वह धर्म नहीं, अधर्म है, शान्ति का नहीं अशान्ति का , उत्थान का नहीं पतन का, न्याय का नहीं, अन्याय का, निष्पक्षता का नहीं, पक्षपात का और दया का नहीं, अपितु निर्दयता का ओछा और क्रूर हथकण्डा है। धर्म यदि मनगढ़न्त परम्पराओं और रुढ़ियों के पंजे में फंसता रहेगा, तो वह प्रथम तो धर्म है ही नहीं और यदि जबर्दस्ती धर्म के रूप में समाज पर थोपा भी गया, तो वह तथाकथित धर्म पुण्य का नहीं पाप का जनक होगा, वह तथाकथित धर्म समानता की स्थापना नहीं, अपितु असमानता की खाई को अत्यधिक चौडा करने वाला होगा। धर्म गुत्थियों (जीवन रहस्यों) को सुलझाने का साधन है, यदि धर्म आडम्बरों के मकडजाल में फंस जायेगा, तो वही तथाकथित धर्म उलझाने वाला बन जायेगा। धर्म के मर्म को जाने बिना न तो समाज समृद्ध बन सकता है और न ही राष्ट्र को समृद्ध बनाया जा सकता है। इस प्रकार के तथाकथित धर्म समाज में विघटन के, विद्रोह के, अन्याय के, अत्याचार के, शारीरिक और मानसिक प्रताड़ना के, समाजिक और परिवारिक कलह के तथा शोषण के कारण बनते हैं। इतिहास के आइने से यदि देखा जाए, तो उसमें ऐसे असंख्य प्रसंग मिल जायेंगे, जो तथाकथित धर्म की आड़ में एक जाति द्वारा दूसरी जाति पर अमानुषिक अत्याचारों के गवाह बन रहे हैं। किसी मनगढ़न्त परम्परा को धर्म का नकाब ओढ़ाकर समाज के एक वर्ग (स्त्री) पर जबर्दस्ती थोपने की कोशिश की जाए पुनः उस मनगढ़न्त परम्परा के विरुद्ध महिलाए ँ यदि विद्रोह का झण्डा बुलन्द करती हैं,

तो इसमें आश्चर्य क्या है? तथाकथित धर्म के तथाकथित ठेकेदारों से जब न्याय की माँग करने पर फटकार मिले, धमकियाँ मिले, उस स्थिति में न्याय के लिए महिलाएं यदि सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाती हैं, तो इसमें आश्चर्य क्या है? यदि आश्चर्य है, तो यह है कि किसी गलत परम्परा के विरुद्ध उठी मुखर आवाज को न सुन पा रहे हैं, न समझ पा रहे हैं और न ही पढ पा रहें हैं और न ही सुनने, समझने व पढ़ने की कोशिश कर रहे हैं। तलाक एक ऐसा ही मुद्दा है, जो इस्लाम के मानने वालों के लिए ही गले की फाँस बना हुआ है। गले की फाँस मैं इसलिए कह रहा हूँ कि जिस मत से यह (तलाक) सम्बन्धित है, उस मत के अनुयायी ही इस मुद्दे पर एक मत नहीं हैं। टी०वी० पर, पत्र- पत्रिकाओं में आए दिन उपरोक्त विषय पर जिस तरह के विचार पढ़ने को, सुनने को मिल रहे हैं, उससे यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि तलाक के शिकंजे में फंसी महिलाएँ (विशेषकर मुस्लिम महिलाएं) उससे छूटने के लिए कितनी आतुर हैं। तलाक से आजादी पाने की महिलाओं की आतुरता तो समझ में आती है लेकिन उन कट्टरवादी मौलवियों और काजियों की आतुरता समझ से बाहर है, जिन्हें इस (तलाक और हलाला) के खत्म होने अथवा उसमें कुछ बुनियादी बदलाव होने का डर सता रहा है। तलाक के मुद्दे पर यदि महिलाओं के प्रति संवेदनशील होकर उदारता से विचार किया होता, तो देश में यह सन्देश नहीं जाता कि अल्लाह का इस्लाम और है तथा मुल्ला का इस्लाम दूसरा है। जब इस्लाम अल्लाह और मुल्ला का अलग-अलग है, तो यह भी निश्चित है कि कुरान और मुल्ला का तलाक भी अलग-अलग ही होगा। फिर तो तथ्य यह है कि आज कुरान का इस्लाम और कुरान का तलाक विवादास्पद नहीं है, अपितु मुल्लाओं का ही इस्लाम और तलाक ही अत्यधिक विवादास्पद है। कुरान के तलाक पर जिनका चिन्तन है, उनके अनुसार तलाक केवल एक बार में नहीं दिया जा सकता उसकी प्रक्रिया लगभग तीन महीने में पूरी होती है और उसके बाद भी पति-पत्नी में सुलह की सम्भवना खत्म नहीं होती। वर्तमान में तलाक का जो भयावह रूप है, उसने संवेदनशील समाज को झकझोर कर रख दिया है। उपरोक्त मामले के सुप्रीम कोर्ट में जाने के बाद अखिल भरतीय मुस्लिम आयोग ने तलाक के मुद्दे पर सुप्रीम कोर्ट द्वारा माँगे गये जबाव में कुछ संशोधनों के साथ एक शपथपत्र (हलफनामा) प्रस्तुत किया है, जिसमें तलाक के दुरुपयोग को रोकने के कुछ नियमों का समावेश किया है। तलाक और हलाला दोनों ही महिलाओं के अधिकारों पर हमला है और पितृसत्तात्मक पुरुषप्रधान समाज की भयावह मिसाल है, जिसके विरुद्ध महिलाओं ने आन्दोलन छेड़कर एक क्रान्ति कथा लिखने का अनूठा प्रयास किया है। महिलाओं के उपरोक्त आन्दोलन को जो नैतिक और सामाजिक समर्थन व्यापकता से मिल रहा है, उसे मैं समाज में सामाजिक परिवर्तन का एक सकारात्मक तथा सुखद संकेत समझ रहा हूँ। शाहबानो से शायराबानो तक तलाक के मुद्दे पर जो राजनीतिक दलों की जो पैंतरेबाजी रही, उससे मुझे बड़ा दुःखद आश्चर्य हुआ क्योंकि जिस राजनीति को समानता, निष्पक्षता तथा न्याय के मूल्यों पर टिके होना चाहिए, उस (राजनीति) ने तलाक और हलाला जैसे मुद्दों पर जिस तरह का अवसारवादी पैंतरा दिखया, उससे समानता, निष्पक्षता, न्याय और संवेदनशीलता की आशाओं को गहरा धक्का पहुँचा है। सुप्रीम कोर्ट में जब एक ही दल के नेता (वकील के रूप में) अब एक ही मुद्दे (तलाक) पर जब दोनों पक्षों (पक्ष-विपक्ष) की पैरवी करते हों। और एक वकील (कपिल सिब्बल) तलाक के पक्ष में दलील के रूप में श्री राम के जन्म को अथवा उन की जन्मभूमि को घसीटते हों, तो मैं राजनीति और राजनेताओं के इससे अधिक निचले स्तर पर गिरने की कल्पना भी नहीं कर सकता। धर्म के पालने में तलाक और हलाला को सुलाकर हमारी राजनीति और राजनेता उससे बड़ी चालाकी से झुलाने का काम कर रहे हैं। तथाकथित धर्मनिरपेक्षता संवेदनशील मुद्दों पर भी किस प्रकार भारी पड़ती है, यह भी उपरोक्त (तलाक हलाला) मुद्दे से भली-भाँति जाहिर होता है। इसे विडम्बना ही कहा जायेगा कि उपरोक्त मसलों पर हमारे माननीय राजनीतिज्ञों ने मध्यस्थ होने का ड्रामा (नाटक) भी नहीं किया। पुनरपि केन्द्र सरकार का पक्ष सकारात्मक रहा , ऐसी आशा थी ही क्योंकि सरकार का पक्ष अथवा निर्णय जाति, संप्रदाय, लिंग और वर्ग के आधार पर नहीं, अपितु सत्यता, निष्पक्षता, तथ्य, संवेदनशीलता और मानवता की बुनियाद पर आधारित होना चाहिए। क्षणिक निहित राजनीतिक स्वार्थों को भुलाकर सरकार यदि कोई साहसिक कदम उठाती है, तो उसके साहसिक कदम से जहाँ महिलाओं को एक त्रासदी से मुक्ति मिलेगी, वहीं राजनीति पर पुती अपयश की कालिमा यदि पूर्णरूप से धुलेगी नहीं, तो कम-से-कम धुलने की शुरूआत अवश्य हो सकती है।

आतंकवाद का भयानक रूप

(राजेशार्य आट्टा)

प्रिय पाठकवृन्द! आज सारा संसार आतंकवाद या उग्रवाद से पीड़ित है। फ्रांस, अमेरिका जैसे शक्तिशाली देश भी इसके प्रभाव से अछूते नहीं रहे हैं। एक मजहब विशेष के लोगों द्वारा किसी भी देश के लोगों को केवल इसलिए मार दिया जाता है क्योंकि वे उनसे अलग पूजापद्धति व रहन-सहन को मानते हैं। इस प्रकार मजहब व अल्लाह के नाम पर होने वाली क्रूरता से संसार आतंकित है और इसके खातमे के लिए प्रयासरत भी है। यह तो इसका स्थूल रूप है और यह आज ही पैदा नहीं हुआ है। रामायण, महाभारत में वर्णित रावण, दुर्योधन आदि इसी भावना के प्रतीक तो हैं। इसीलिए क्षात्रधर्म की अनिवार्यता बताई गई है, जो अन्याय व अत्याचार को मिटा सके। आध्यात्मिक ग्रन्थों में मन के बुरे विचार ही आतंकवादी हैं, जिनसे प्रेरित हुआ मनुष्य दूसरों को हानि पहुँचाकर अपना आत्मिक पतन कर लेता है। पूज्यपाद आचार्य श्री ज्ञानेश्वरार्य जी ने आतंकवाद की व्यापक परिभाषा देते हुए **'समस्या समाधान'** पुस्तक में लिखा है -

''समाज, परिवार, राष्ट्र और विश्व में शांतिपूर्वक, प्रेमपूर्वक, सद्भावनापूर्वक सभी व्यक्तियों को जीने का अधिकार है। सभी को इस पृथ्वी के ऊपर खाने, पीने का अधिकार है, पढ़ने का अधिकार है, संसार के पदार्थों को भोगने का अधिकार है। सभी को अपने विकास का, उन्नति का या प्रगति का अधिकार है। उस अधिकार को अन्यायपूर्वक, भयपूर्वक, त्रासपूर्वक रोकना, रोकने का प्रयास करना, उग्रवाद, अतिवाद या आतंकवाद है।''

कोई भी व्यक्ति परिवार, संस्था, समाज या राष्ट्र के किसी भी क्षेत्र में रहता हुआ, जब केवल स्वार्थ (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि) की पूर्ति के लिए दूसरों से अन्याय, पक्षपात व हिंसा आदि का व्यवहार करता है, तो यह आतंकवाद कहलाता है। कई बार आतंकवाद से आतंकवाद पैदा होता है, क्योंकि क्रिया की प्रतिक्रिया तो होती है। जैसे ब्राह्मण आदि जाति अभिमानियों ने शूद्रों (दलितों) को उनके पढ़ने लिखने व सम्मान से जीने के अधिकारों से वंचित रखा, तो पेरियार व डॉ० अम्बेडकर ने ब्राह्मणों (संस्कृत) के ग्रन्थों को घृणित बताकर जलाना शुरू कर दिया। उनके अनुयायी अब हिन्दू विरोधी गतिविधियों में बढ़-चढ़कर भाग ले रहे हैं। आतंकवाद सदा ही मानवता का शत्रु रहा है, वह चाहे क्रिया से उत्पन्न हुआ हो, या प्रतिक्रिया से। आचार्य श्री के अनुसार इस क्रिया और प्रतिक्रिया के मूल में होती है- **नास्तिकता व अविद्या।** कर्मफल व ईश्वर के सच्चे स्वरूप को न जानकर मनमानी कल्पना करने वाले लोग भी आस्तिक नहीं हैं। क्योंकि ऐसे लोग कभी भी मनमाने ईश्वर (खुदा) को खुश कर काल्पनिक स्वर्ग के आनन्द (भौतिक सुख) पाने के लिए किसी पर भी अत्याचार कर सकते हैं। यज्ञों में पशुबलि, मूर्तियों पर बलि (नरबलि भी) जेहाद के नाम पर मुस्लिमेतर लोगों का कत्लेआम, बकरीद पर लाखों जीवों की हत्या आदि करने वाले भी स्वयं को आस्तिक व धार्मिक मानते हैं, तो फिर पापी कौन होगा?

१९२१ ई० में हुए मोपला दंगे के बाद १९२३ ई० में आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पञ्जाब लाहौर द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'मालाबाद और आर्य समाज' में पृष्ठ १९ पर लिखा है कि अन्तिम हैदर और सुलतान टीपू का समय भी आ पहुँचा। इन दोनों ने मालाबाद में राज्य स्थापित करना चाहा और लोगों को भयभीत करने के लिए घोर से घोर अत्याचार किये। सुलतान टीपू के अत्याचारों के विषय में जो उसने मालाबाद के भीतर सन् १७९० ईसवी में किये, कहा जाता है :-

"मालाबारी लोगों के साथ उसका व्यवहार महा

पैशाचिक था, कालीकट में माताओं को फाँसी पर लटकाया गया, बच्चों की गर्दनें मरोड़ी गईं, ईसाई और हिन्दुओं को नग्न करके हाथी के पाँव के साथ बाँध कर उनके टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये, समस्त गिरजे और मन्दिर उसने नष्ट कर दिये और स्त्रियों को जबरदस्ती यवनों को सौंप दिया। उस समय मन्दिर, मस्जिद बनाए गए और इस समय भी इस प्रकार की मस्जिदें दिखाई देती हैं, जो पहिले मन्दिर थे।"

"इस (१८५२ ई०) मोपला विद्रोह में जब कुछ मोपले सरकारी सेना से मारे जा चुके थे, तो उसी दिन सायंकाल को चैम्बर शेरी का थंगल मसजिद में बैठा हुआ आकाश की ओर देख रहा था और हँस रहा था। पास बैठे हुए मोपलों ने पूछा- "हजरत, आप किस बात पर हँसते हैं।" उसने उत्तर दिया- "तुम्हारे सुनने के योग्य यह बात नहीं है।" मोपलों ने हठ किया कि "हजरत, हमें अवश्य बताइये।" वह उसी प्रकार आकाश की ओर मुख किये हँसता रहा। अन्त में बड़ी देर के पीछे उसने कहा- "मैं देखता हूँ कि आकाश में बिहिश्त की खिड़िकियाँ खुल गई हैं और उनमें से हूरें निकल-निकल कर उन मोपलों का स्वागत कर रही हैं ,जो आज प्रातः शहीद हुए थे।"

यह सुनकर मोपलों ने पूछा- "हजरत, हमें यह दिन कब नसीब होगा?" उसने उत्तर दिया- "वह दिन तो आया हुआ है, तुम लोग तो गाफिल पड़े हुए हो, जानते नहीं हो कि गोरखों का कैम्प लगा हुआ है। जाओ, हमला करो और शहीद हो जाओ।" इस पर ५०० मोपले तैयार हुए। उन्होंने हमला किया और कट- कट कर मर गए।

१६ अगस्त, १६२१ को आरम्भ हुए मोपला दंगे के विषय में लिखा है- बागी मोपलों ने पहले सब हिन्दुओं से तलवारें, बन्दूकें और दूसरे हथियार छीन लिए। फिर हिन्दू मन्दिरों की तलवारें और छुरियाँ भी इकट्ठी कीं। उसके पीछे हिन्दुओं से चावल और धन वसूल किया। फिर उनसे कहा कि या तो मुसलमान बनो या अपने प्राण दे दो। इसके साथ ही हिंदू स्त्रियों का सतीत्व भ्रष्ट किया, उन्हें जबरदस्ती मुसलमान बनाकर मुसलमानों से (के साथ) विवाह दिया। छोटे- छोटे बच्चों को उनके माता- पिता के देखते- देखते निर्दयता से कतल कर दिया और स्त्रियों के पेट फाड़ डाले और इसी प्रकार के पैशाचिक अत्याचार किए, जिनको स्मरण करके शरीर में रोमांच हो जाता है।

आर्य समाज ने वहाँ शुद्धि व पीड़ित हिन्दुओं की सहायता का कार्य आरम्भ किया, तो लाला खुशहाल चन्द खरसन्द (महात्मा आनन्द स्वामी जी) महात्मा हंसराज जी के आदेश से मालाबार जा पहुँचे। वे लिखते हैं- पहिले मैं अकेला ही कालीकट से पूर्व की ओर २० मील पैदल चल चुकने के पश्चात् पुत्तूर ऐ मशम में पहुँचा। यह वही परगना है, जहाँ हिन्दुओं की लाशों से ३ कुए भरे गए थे।... यह सारा परगना बरबदार हुआ है। सब हिन्दू घर जले हुए दिखाई दिये।... एक कूप इस घर से १ फरलांग के फासले पर था। जो हिन्दू मुसलमान होने से इंकार करते थे, उनको इस कूप पर लाया जाता था, जब मैं इस कूप के पास पहुँचा, तो मैंने देखा कि कुए में उन धर्म्म के लिए मरने वालों की लाशें मौजूद नहीं हैं, बल्कि खोपड़ियां हैं, पिंजर हैं, टांगों और भुजाओं की हड्डियाँ हैं। जब मैंने इन चीजों को देखा, तो मेरा रोमांच हो गया।... मैं वहाँ से हट कर दूसरे कूप की ओर जो इस कूप से २ फ़लांग की दूरी पर होगा, गया।... यह वही कूप है, जिसमें से एक हिन्दू नायर, बच कर निकल आया था और उसने हिन्दुओं के भीषण हत्याकांड की कहानी सुनाई थी। जो बातें उसने बयान की थी, उन्हें सर्वथा सत्य पाया। यह कुआँ भी मनुष्यों की हड्डियों से आधा भरा हुआ था।...."

पिछले वर्ष नेपाल में भूकम्प आया, तो आर्यसमाज की तरफ से भी सहायता सामग्री ले जाई गई। परोपकारिणी सभा अजमेर से आचार्य कर्मवीर जी भी नेपाल गये थे। उन्होंने वहाँ देखे दो मन्दिरों (धार्मिक बूचड़खानों) के विषय में लिखा है- ''२१ मई (२०१५) को हम लोग प्रसिद्ध दक्षिण काली का मन्दिर देखने गये,... ये कोई उपासना स्थल नहीं था, ये तो एक

प्रकार का धार्मिक बूचड़खाना था, जहाँ पर सुबह से शाम तक सैकड़ों निरीह-निर्बल पशु-पक्षियों, बकरे-मुर्गे इत्यादि प्राणियों का संहार (हत्या) धर्म के नाम पर किया जाता है।... नेपाल के तराई के क्षेत्र में बिहार की सीमा से लगता हुआ एक स्थान है, जहाँ पर एक गढ़ी माता का मन्दिर है, इस स्थान पर चार वर्ष में एक विशेष मेला लगता है, जहाँ पर कई एकड़ भूमि में कई लाख पशुओं की सामूहिक बलि दी जाती है। इस वर्ष भी लगभग ५ लाख कटड़े-भैंसों की बलि दी गई। ५ लाख की संख्या तब रही, जब भारत सरकार ने सीमा पर प्रतिबन्ध लगाया कि इस बलि के लिए भारत से पशुओं को न जाने दिया जाए।"

पूज्यपाद आचार्य श्री आनन्द प्रकाश जी (रंगारेड्डी) ने 'मीमांसा-दर्शन' पुस्तिका में लिखा है- "यद्यपि अब उत्तर भारत में श्रौतयज्ञों की परम्परा प्रायः लुप्त हो गयी है। जो करते हैं, वे प्रायः पशुओं के अंगों को काटकर यज्ञ में नहीं डालते; क्योंकि उधर बहुत से संगठनों ने इसका प्रबल विरोध किया।... किन्तु दक्षिण भारत में पशुओं के अंगों को काटकर याग में डालने की परम्परा अभी प्रचलित है। हमने इस वीभत्स प्रक्रिया को स्वयं देखा है। कुछ दिनों पूर्व जनवरी २००७ में हैदराबाद से विजयवाड़ा मार्ग पर एक मन्दिर के प्रांगण में सौत्रामणि आदि यागों में तीन दिन तक बहुत सी भेड़-बकरियों के अंगों को काट- काटकर आहुति के रूप में डाला गया। भेड़ की वपा (अन्दर की सफेद झिल्ली) को कंटीली झाड़ी की टहनी पर फैलाकर, सेंककर घी के साथ मिलाकर आहुतियाँ दी गयीं। भेड़-बकरियों का दम घोटकर (मारकर), फाड़कर उनके एक-एक अंग (हृदय आदि) को निकालकर, आलू की तरह उबालकर, आगे- पीछे के टुकड़े काट-काटकर घी के साथ मिलाकर आहुतियाँ दी गयीं। कुछ आर्य- बन्धुओं ने विरोध किया, तो उसे पुलिस की सहायता से दबा दिया गया। ऋत्विग्-वर्ग का कथन था कि हम तो सब कुछ वेद के अनुसार अनुष्ठान कर रहे हैं।..

मैंने स्वयं विद्यार्थियों के साथ उनकी प्रयोगविधि को जानने की दृष्टि से मन को अति कठोर करके देखा।

विद्यार्थियों से तो पूरा देखा नहीं गया। अन्यत्र (केरल, कर्नाटक, तमिलनाडु आदि में) भी ये अनुष्ठान होते रहते हैं।"

घोर स्वार्थी मानव (दानव) द्वारा की जा रही निरपराध प्राणियों की हत्या को देखकर करुणा-मूर्ति महर्षि दयानन्द का हृदय रो पड़ा और अपनी वेदना को लगभग १२५ वर्ष पूर्व 'गोकरुणानिधि' में व्यक्त करते हुए लिखा है- "हे धार्मिक सज्जन लोगो! आप इन पशुओं की रक्षा तन मन और धन से क्यों नहीं करते? हाय! बड़े शोक की बात है कि जब हिंसक लोग गाय, बकरे आदि पशु और मोर आदि पक्षियों को मारने के लिये ले जाते हैं, तब वे अनाथ तुम हमको देखके राजा और प्रजा पर बड़े शोक प्रकाशित करते हैं कि देखो! हमको बिना अपराध बुरे हाल से मारते हैं और हम रक्षा करने तथा मारने वालों को भी दूध आदि अमृत पदार्थ देने के लिए उपस्थित रहना चाहते हैं और मारे जाना नहीं चाहते। देखो! हम लोगों का सर्वस्व परोपकार के लिये है और हम इसलिये पुकारते हैं कि हमको आप लोग बचावें। हम तुम्हारी भाषा में अपना दुःख नहीं समझा सकते और आप लोग हमारी भाषा नहीं जानते, नहीं तो क्या हममें से किसी को कोई मारता तो हम भी आप लोगों के सदृश अपने मारने वालों को न्याय व्यवस्था से फाँसी पर न चढ़वा देते? हम इस समय अतीव कष्ट में हैं, क्योंकि कोई भी हमको बचाने में उद्यत नहीं होता।"

अपने आहार में मांसाहार को शामिल करने वाले देश- विदेश के करोड़ों मनुष्य चाहे स्वयं को धार्मिक या आस्तिक न भी मानते हों, पर वे आतंकवादी हत्यारे तो हैं ही। क्योंकि सभी प्राणियों के पास उनकी सबसे कीमती वस्तु उनके प्राण होते हैं और अपने क्षणभर के मनोरंजन के लिए निरपराध प्राणी या उसके प्राण छीन लिये जाते हैं इस अन्याय व अत्याचार को आतंकवाद नहीं तो और क्या कहें?

मानव की यह क्रूरता पशु-पक्षियों तक ही सीमित

नहीं रहीं। कुछ भौतिक पदार्थों की प्राप्ति के लिए वह सहधर्मी मानव की बलि देने से भी नहीं चूकता- फिर वह चाहे धर्म की आड़ ले या राजनीति की। **'दयानन्द सन्देश' जनवरी १९९८ के अंक में श्री विश्वनाथ प्रसाद विलासपुर (म.प्र.) ने भारत में मनुष्य बलि की निर्दयतापूर्ण घटनाओं का वर्णन किया है- जो सिद्धि पाने, धन पाने, उपज बढ़ाने, सन्तान प्राप्ति आदि के लिए की गई थीं।** इक्कीसवीं शताब्दी के मानव द्वारा अपने परायों की निर्दयतापूर्वक की गई हत्याओं का विवरण पढ़कर हृदय काँप उठता है। हाय, अविद्या! तेरी करतूत!

जैसे आर्य समाज के प्रारम्भिक ५० वर्षों में आर्य प्रचारकों पं० चिरंजी लाल, पं० लेखराम, पं० तुलसीराम, स्वामी श्रद्धानन्द, महाशय राजपाल, भक्त फूलसिंह आदि की मजहबी उन्माद में इस्लाम के गुण्डों द्वारा हत्याएँ की गई थीं, उसी प्रकार केरल में सी.पी.एम. (कम्यूनिष्ट पार्टी) के गुण्डों द्वारा १९९० से लेकर अब तक आर. एस.एस. के ५०० से अधिक कार्यकर्त्ताओं की हत्या की जा चुकी है। श्री विष्णु गुप्त ने 'पंजाब केसरी' में १८. ०५.२०१६ को लिखा है कि कभी बड़े मार्क्सवादी रहे टी.वी. चन्द्रशेखरण ने सी.पी.एम. से नाता तोड़कर अपनी रैवोल्यूशनरी मार्क्सवादी पार्टी का गठन कर लिया, तो सी.पी.एम. वाले गुण्डों ने उन्हें काट- काटकर उनकी हत्या कर दी। सुलोचना नामक महिला के सामने उसके २६ वर्षीय पुत्र सुजीत के पैर तोड़ डाले। उसके बाद उसकी बाजुओं को तोड़ा गया, फिर उसके सिर को कुचलकर उसकी हत्या कर दी गई। क्योंकि उसने सी. पी.एम. छोड़कर आर.एस.एस. से सम्बन्ध जोड़ा था।

प्रबुद्ध पाठक! सोचिये, साम्यवाद (समानवाद) का नारा देने वाले मार्क्सवाद या समाजवाद में यह हिंसक भावना कहाँ से आयी? वास्तव में फैक्टरी के मालिक की हत्या कर उस पर अधिकार करने के लिए मजदूरों को प्रेरित करने वाले समाजवाद के मूल में ही हिंसा समायी हुई है। कर्मफल व्यवस्था व ईश्वर के अस्तित्व को नकारने वाले ये लोग गाड़ी में चलने वाले को टांग पकड़कर नीचे खींचकर पैदल चलने वालों के साथ चलाना चाहते हैं। इतिहासवेत्ता विचारकों का कथन है कि कुल मिलाकर साम्यवादी साम्राज्यवाद ने ७५ वर्ष के शासनकाल में जो विश्व में नरसंहार तथा बर्बरतापूर्ण अत्याचार किए, उसकी मिशाल विश्व के इतिहास में कहीं भी नहीं है।

ऊपर वर्णित व्यक्तिगत व सामूहिक आतंकवाद को समाप्त करने के लिए आचार्य श्री ज्ञानेश्वरार्य जी ने उपाय सुझाते हुए लिखा है- ''सच्चे ईश्वर की व्यक्तियों के मस्तिष्क में स्थापना करना; समाज के अन्याय, अत्याचार व अभाव को समाप्त करना; शिक्षा का प्रचार करना व खूंखार हत्यारों को सार्वजनिक रूप से कठोर दण्ड देना। तभी शान्ति का साम्राज्य स्थापित होकर सबको उन्नति का अवसर मिल सकता है। यदि लोग शराब आदि नशीले पदार्थों व मांसाहार जैसे तामसिक भोजन का परित्याग कर शुद्ध शाकाहार अपना लें, तो अपना देश फिर वैसा बन सकता है, जैसा ४०० ई० में भारत यात्रा पर आये चीनी यात्री फाहियान ने लिखा है-

यहाँ (मथुरा) से दक्षिण मध्य देश कहलाता है। यहाँ शीत और उष्ण सम हैं। प्रजा प्रभूत और सुखी है। व्यवहार की लिखा-पढ़ी और पंच-पंचायत कुछ नहीं है। लोग राजा की भूमि जोतते हैं और उपज का अंश देते हैं। जहाँ चाहे जाएं, जहाँ चाहें रहें। राजा न प्राण दण्ड देता है और न शारीरिक दण्ड देता है। अपराधी को अवस्थानुसार उत्तम साहस व मध्यम साहस का अर्थ दण्ड दिया जाता है। बार-बार दस्यु कर्म करने पर दक्षिण करच्छेद किया जाता है। राजा के प्रतिहार और सहचर वेतनभोगी हैं। सारे देश में कोई अधिवासी न जीवहिंसा करता है, न मद्य पीता है और न लहसुन प्याज खाता है, सिवाय चाण्डाल के। दस्यु को चाण्डाल कहते हैं। वे नगर के बाहर रहते हैं और नगर में जब पैठते हैं तो सूचना के लिए लकड़ी बजाते चलते हैं कि लोग जान जाएं और बचाकर चलें कहीं उनसू छू न जाएं। जनपद में सूअर और मुर्गी नहीं पालते, न जीवित पशु

शेष पृष्ठ २७ पर

मनुष्य जीवन के उत्थान का एक सरल उपाय

(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून)

संसार में अनेक प्रकार के प्राणी हैं, जिनमें से एक मनुष्य है। मनुष्य उसे कहते हैं, जिसमें मनन करने का गुण व सामर्थ्य है। मनन करना सत्य व असत्य के विवेक वा निर्णय करने के लिए होता है। मनुष्य के पास अन्य प्राणियों की तुलना में उनसे कहीं अधिक विकसित बुद्धि तत्व व बोलने के लिए वाणी होती है। दो हाथ परमात्मा ने मनुष्य शरीर के साथ दिये हैं, जिससे यह आत्मा, मन, मस्तिष्क व बुद्धि के निर्णीत विचारों को फलीभूत व सफल कर सकता है। हम जानते हैं कि मनुष्य का जन्म व उत्पत्ति माता पिता के द्वारा होती है। जन्म के समय सन्तान एक शिशु के रूप में होती है, जो रो तो सकती है, परन्तु अपने कार्य स्वयं नहीं कर सकती। उसे अपने माता-पिता व संबंधियों पर निर्भर होना पड़ता है। आरम्भ में माता के दूध व कुछ समय बाद दुग्ध, फल व अन्न के द्वारा उसके शरीर का विकास होता है। समय बीतने के साथ वह उठना, बैठना व चलना आरम्भ करता है। माता-पिता की जो भाषा वह सुनता रहता है, उसी को धीरे- धीरे बोलना आरम्भ करता है और कुछ काल बाद उसे अच्छी तरह से बोलना भी आरम्भ कर देता है। उसकी बुद्धि भी अब कई विवेकपूर्ण बातें करने लगती है। कई बार तो वह ऐसे उत्तर देते हैं, जिसका अनुमान बड़े भी नहीं कर सकते। इस मन व बुद्धि को ज्ञान से आलोकित करने के लिए उसे शिक्षित करने की आवश्यकता होती है। माता अपनी सन्तानों की पहली गुरु होती है। जब वो तीन वर्ष से अधिक आयु का हो जाता है तो माता-पिता उसे स्कूल या पाठशाला भेजना आरम्भ कर देते हैं, जिससे वह कुछ अच्छे संस्कार प्राप्त करने के साथ पद्य या गद्य व अक्षर ज्ञान प्राप्त कर सके। यह उसके अध्ययन का आरम्भ काल कहा जा सकता है। बाल्यकाल में बच्चा धाराप्रवाह मातृभाषा तो बोलता ही है, इसके साथ ही वह अपने हित व अहित भी कुछ-कुछ समझने लगता है। बाद में कक्षा दस, बारह, चौदह पन्द्रह अथवा एम०ए० सहित पी.एच.डी. व डाक्टर, इंजीनियर, प्रबन्धन, शोध आदि उपाधियों से भी अलंकृत होता है। शिक्षा पूरी कर वह अपनी आजीविका अर्जित करने की योग्यता भी प्राप्त कर लेता है। परन्तु अभी तक उसे न तो ईश्वर के सत्य स्वरूप का ज्ञान होता है, न उपासना की विधि और न ही यज्ञ आदि करना आता है। माता-पिता के प्रति कर्तव्यों का भी यथोचित ज्ञान अधिकांश युवाओं को नहीं होता। इसके लिए उसे अन्य ग्रन्थों व विद्वानों की शरण में जाना होता है, जहाँ उसे इन विषयों से संबंधित सत्य ज्ञान प्राप्त हो सके।

मनुष्य जो घरेलू व स्कूली शिक्षा प्राप्त करता है, उससे अपने जीवन के उद्देश्य (मोक्ष-प्राप्ति)व उसकी प्राप्ति के साधनों का ज्ञान व अभ्यास उसे नहीं होता। अधिकांश मनुष्यों का सारा जीवन व्यतीत हो जाता है और वह जीवन के उद्देश्य के जानने व अपना इहलोक व परलोक संवारने वाले कर्तव्यों से वंचित ही रहते हैं, जिसका हानिकारक परिणाम उनके परजन्म पर पड़ना निश्चित होता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि माता-पिता अपनी सन्तानों को बचपन से ही जीवन के वास्तविक उद्देश्य सहित उसे आर्यों के धार्मिक ग्रन्थों वेद, उपनिषद्, दर्शन, मनुस्मृति सहित सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि, आर्याभिविनय, व्यवहारभानु, उपदेशमंजरी आदि का परिचय दें। यदि इन सबका सार भी बच्चों को बता दिया जाये, तो उससे उनकी अविद्या घट सकती है। इसके लिए हमें यह उपयुक्त लगता है कि सभी घरों में माता-पिता व परिवार के सभी सदस्य मिलकर सन्ध्या व अग्निहोत्र किया करें। प्रत्येक रविवार को सम्भव हो, तो आर्यसमाज के सत्संग में अवश्य जाया करें। आर्यसमाज के मंत्री जी से वह निवेदन करें कि प्रत्येक सप्ताह अच्छे विद्वानों को बुलाकर उनका प्रवचन करायें। इससे उन्हें पर्याप्त लाभ होगा और आर्यसमाज के सत्संगों में जाने में उत्साह उत्पन्न हुआ करेगा। यह सब करने पर भी

स्वाध्याय से जो लाभ होता है, उसकी पूर्ति इन सभी साधनों से नहीं होती। इसके लिए हमें यह उचित प्रतीत होता है कि सभी आर्य परिवारों में प्रति दिवस सायंकाल व रात्रि निर्धारित समय पर सत्यार्थप्रकाश का पाठ हुआ करे। इसे यदि नित्यकर्म में सम्मिलित कर लिया जाये और इसे भोजन की भांति अनिवार्य परम्परा बना दें, तो यह जीवनोन्नति का एक बहुत बड़ा साधन बन सकता है। परिवार का यदि कोई सदस्य किसी कारणवश नगर व ग्राम से बाहर जाये, तो वह सत्यार्थप्रकाश अपने साथ ले जाये और जब उसे सुविधा हो, उस समय वह सत्यार्थप्रकाश का पाठ अवश्य करे। इससे उसके सत्यार्थप्रकाश के पाठ में अनभ्यास के कारण किसी प्रकार भी रुकावट नहीं आयेगी। यदि बच्चे व युवा घर में सन्ध्योपासना, अग्निहोत्र व सत्यार्थ प्रकाश के स्वाध्याय तक ही सीमित रहें तो भी हमें लगता है कि इस नियम का पालन करने से मनुष्य के जीवन का बहुविध कल्याण हो सकता है। इससे उस मनुष्य के भावी जीवन के प्रारब्ध में गुणात्मक वृद्धि होने से परजन्म में इसका लाभ होगा। यह कोई कठिन कार्य नहीं है। हम यह भी अनुभव करते हैं कि जब मनुष्य सन्ध्योपासना, यज्ञ व सत्यार्थप्रकाश का स्वाध्याय करेगा, तो उन्हें इतर कर्तव्यों का बोध भी साथ-साथ होता जायेगा, जिसके विषय में उसे कुछ बताने की आवश्यकता नहीं है। अन्य सभी कर्त्तव्यों को भी वह स्वयं यथासमय करता रहेगा, जिससे कि उसे इस जन्म व परजन्म की जीवन की उन्नति का लाभ होगा।

मनुष्य जीवन में संगतिकरण का भी महत्व है। अच्छे लोगों की संगति का अच्छा परिणाम होता है और बुरे लोगों की संगति से मनुष्य का जीवन व भविष्य पतन को प्राप्त हो जाता है। सत्यार्थप्रकाश पढ़कर जब हम सन्ध्योपासना व स्वाध्याय करते हैं, तो हमारी संगति अध्ययन किये जा रहे विषय सहित ईश्वर के साथ होती है। ईश्वर संसार के सब गुणों का अधिपति व स्वामी होने सहित सभी अवगुणों से सर्वथा मुक्त है। संगति से ध्येय के गुण व अवगुणों का संचार मनुष्य के जीवन व आत्मा आदि अन्तःकरण चतुष्टय में होता है। अतः ईश्वरोपासना, यज्ञ एवं सत्यार्थप्रकाश के अध्ययन से ईश्वर व ऋषि दयानन्द जी की संगति का लाभ भी मिलता है। अब यदि हमारा ऐसा जीवन होगा, तो वह उन्नत व प्रतिष्ठित जीवन ही होगा। यदि कोई व्यक्ति अपने जीवन में सत्यार्थप्रकाश के अध्ययन का व्रत लेता है, तो वह तीन महीनों में तो सत्यार्थप्रकाश का एक बार अध्ययन पूर्ण कर सकता है। कोई व्यक्ति एक माह व कोई इससे कुछ अधिक समय में भी कर सकता है। इस प्रकार एक वर्ष में न्यूनतम चार बार व उससे भी अधिक बार सत्यार्थप्रकाश का अध्ययन हो जायेगा। इससे मनुष्य की जो आत्मिक बौद्धिक व मानसिक स्थिति बनेगी, उसका चिन्तन कर हम कह सकते हैं कि वह सत्यार्थप्रकाश का अधिकारी विद्वान् हो सकता है। उसकी तुलना में किसी मत-मतान्तर का कोई विद्वान् ठहर नहीं सकता। हमें स्मरण है कि हमने एक दिन में १० घंटों से भी अधिक अध्ययन करने का अभ्यास किया। यदि इस गति से कोई सत्यार्थप्रकाश पढ़ेगा, तो एक वर्ष में ही वह सत्यार्थ प्रकाश पर बहुत अधिक नहीं, तो यथोचित अधिकार प्राप्त कर ही सकता है। अतः मनुष्य जीवन को अग्रणीय व श्रेष्ठ बनाने के लिए मनुष्य तीन व्रत- सन्ध्या करना, यज्ञ-अग्निहोत्र करना व सत्यार्थप्रकाश का अध्ययन करना तो कम से कम ले ही सकते हैं। हमें यह भी अनुभव होता है कि ऐसा करने से मनुष्य की भौतिक उन्नति व आध्यात्मिक उन्नति दोनों होंगी और वह समाज में प्रतिष्ठित व्यक्ति बन सकता है। यही मनुष्य जीवन का उद्देश्य भी है। यदि मनुष्य अधिक समय निकाल सके, तो अतिरिक्त समय में समस्त वैदिक साहित्य का अध्ययन करने से वह अच्छा विद्वान्, लेखक व उपदेशक बन कर अपना व समाज का अनेक प्रकार से कल्याण कर सकता है। हमें सन्ध्या, अग्निहोत्र और सत्यार्थप्रकाश का स्वाध्याय, यह तीन कार्य जीवन को उन्नत व श्रेष्ठ बनाने के सरल उपाय लगते हैं, जिन्हें अल्प व अशिक्षित व्यक्ति भी अल्प प्रयास कर सिद्ध कर सकता है। हम आशा करते हैं कि पाठक इस पर विचार करेंगे और इन व्रतों को जीवन में धारण करेंगे, जिससे वह धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के मार्ग के पथिक बन कर अधोगति को प्राप्त न होकर उत्तम जीवनोन्नति व परमगति को प्राप्त होंगे। ओ३म् शम्।

❑❑

पाप से कैसे बचें

(महात्मा चैतन्यमुनि)

वेद का एक सुप्रसिद्ध मन्त्र है-

ओ३म् अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान्विश्वानि देव

वयुनानि विद्वान्।

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम।। (यजु० ५-३६,७-४३)

इस मन्त्र में कहा गया है कि प्रभु को हम इसलिए नमस्कार करते हैं, उसकी स्तुति इसलिए करते हैं क्योंकि वह हमारी कुटिलताओं को दूर करते हैं तथा हमें पाप से बचाते हैं। मन्त्र में ही यह भी बता दिया कि हम कुटिलताओं तथा पाप से कैसे बच सकते हैं। इसके लिए मन्त्र में मुख्य रूप से दो बातें कही हैं-

१. हम पवित्र साधनों से ही धन कमाएं और

२. हमारे समस्त कर्म ज्ञान-विज्ञान पूर्वक हों अर्थात् मर्यादित हों।

सर्वप्रथम धन की ही बात कर लेते हैं... धन की पवित्रता के सम्बन्ध में वेद में प्रार्थना की गई है-

ओ३म् एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम्।

वर्षिष्ठमूतये भर।। (ऋ. १-८-१)

हे प्रभो! हमारे रक्षण के लिए ऐसा धनैश्वर्य दीजिए जो -

१. सानसिम्- सबके साथ बाँटकर खाया जाए। हमारा धन केवल हमारे ही काम न आए, बल्कि हम सबको बाँटकर खाने वाले हों। व्यक्ति की इसी भावना को यज्ञ भावना कहा गया है-

अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।

जहाँ यह भावना समाप्त होगी, वहीं पर समरसता समाप्त हो जायेगी, आपसी व्यवहार समाप्त हो जायेगा और बिखराव आरंभ हो जायेगा। इसलिए वेद कह रहा है कि बाँटकर खाओ।

२. सजित्वानम्- धन प्राप्त करके उस धन के विजेता बने रहो। अक्सर देखा यह जाता है कि धन आने पर व्यक्ति अनेक प्रकार के व्यसनों का शिकार हो जाता है या धन के अहंकार में आकर असंवैधानिक कार्य करने लग जाता है, जिसका परिणाम दुःख ही होता है। उस धन से अपनी सामाजिक एवं आत्मिक उन्नति करें... यश प्राप्त करें...।

३. सदासहम- जिस धन से हम सहनशील और स्वावलम्बी बने रहें और

४. वर्षिष्ठम्- वह धन जो अतिशयेन संवृद्ध हो, हमें बढ़ाने वाला हो, हमारे जीवन में सुखों की वर्षा करने वाला हो। यह तभी हो सकेगा, जब पवित्र साधनों से धन कमाया गया हो, अन्यथा मनुजी के अनुसार अधर्म से कमाया गया धन तो कभी न कभी मूल सहित नष्ट हो ही जाऐगा...।

पाप से बचने का दूसरा मुख्य उपाय बताया

-**वयुनानि विद्वान्** अर्थात् हमारे समस्त कृत्य ज्ञान-विज्ञानपूवर्क हों तथा हमारा जीवन मर्यादित हो। वेद कहता है (अथर्व० ५-१-६) (सप्त मर्यादाः कवयः) जो सात मर्यादाएं परमात्मा व ऋषियों ने सुनिश्चित् की है (तासाम् एकाम्) उनमें से एक को भी (अभ्यगात्) जो प्राप्त होता है, वह (अंहुरः) पापी होता है। इन सात मर्यादाओं का वर्णन यास्कमुनि जी ने निरुक्त में इस प्रकार किया है :- १. स्तेय - (चोरी), २. तल्पारोहण - (व्यभिचार), ३. ब्रह्म-हत्या - (नास्तिकता व प्रभु आज्ञा का उल्लंघन), ४. भ्रूण हत्या - (गर्भघात), ५. सुरापान - (शराब पीना), ६. दुष्टस्य कर्मणः पुनः पुनः सेवा - (दुष्ट कर्म का बार-बार सेवन) और ७. पातकेऽनृतोद्यम् - (पाप करने के बाद उसे छिपाने के लिए झूठ बोलना) यदि व्यक्ति पाप से बचना चाहता है, तो इन मर्यादाओं का अक्षरशः पालन करना अपेक्षित है अर्थात् ये-ये काम व्यक्ति को नहीं करने चाहिए। मर्यादा कहते हैं सीमा

को। वेद, संविधान, नियम आदि तथा मनुस्मृति आदि ग्रन्थ हमारे लिए ये सीमाएं निर्धारित करते हैं। यदि हम इन सीमाओं का उल्लंघन करेंगे, तो दण्ड के भागी होंगे ही। तनिक विचार करें कि ऐसे कौन से कारण हैं, जिनके कारण व्यक्ति मर्यादाओं का उल्लंघन करके पाप-कर्म कर बैठता है। इस सम्बन्ध में ऋग्वेद में कहा गया है-

न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा सुरा मन्युर्विभीदको
अचितिः।
अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता।। (ऋ० ७-८६-६)

मन्त्र में बताया गया है कि जिन पाप'कारणों से हम उस वरुण-वरण करने योग्य प्रभु की ओर नहीं जा पाते वे हैं- १. ध्रुतिः - वासनाएं, २. सा सुरा - शराब, ३. मन्युः - अर्थात् क्रोध, ४. विभीदकः - जुआ, ५. अचित्तिः - अज्ञान और ६. स्वप्नश्चनउत् :- आलस्य व प्रमाद। मूलतः पापकर्म के यही कारण होते हैं, चाहे इनकी दिशाएं व उपदिशाएं तथा कोटियाँ अनेक हो सकती हैं। विचार करें, तो पाप की निम्नलिखित कोटियाँ हैं-

१. बाल-वृत्तिज पाप- चींटियों को, बिल्ली, कुत्ता, मेंढक आदि को नाहक ही दुःख देना या उन्हें मार देना। इन्हें बाल-वृत्तिज कहा गया है, मगर कुछ बड़े लोग भी इस प्रकार के पाप-कर्म करते हैं।

२. वीर- वृत्तिज पाप- ये वे पाप हैं, जिन्हें व्यक्ति किसी प्रकार के अहंकार में आकर कर बैठता है...।

३. भीत्ति-वृत्तिज पाप- कुछ पाप ऐसे भी हैं, जो किसी के उकसाने पर या स्वयं ही अपने भय के कारण किए जाते हैं।

४. संस्कारज पाप- पुराने संस्कारों अर्थात् आदतों के वशीभूत होकर जो पाप किए जाते हैं।

५. संस्कृतिज पाप- देश या जाति विशेष द्वारा अवैदिक मान्यताओं के आधार पर जैसे पशुओं की बलि एवं कुर्बानी आदि।

६. चतुवर्गज पाप- जो काम, क्रोध, लोभ और मोह के वशीभूत होकर किए जाते हैं...।

अब विचार करें कि इन पापों से कैसे बचा जा सकता है। मुख्यतः समाज में प्रचलित पाँच भयों से व्यक्ति पाप से बच सकता है। वे भय हैं- १. समाज का भय, २. राष्ट्र का भय, ३. अपने पतन का भय, ४. धर्म का भय और ५. परमातमा का भय। वेद में पाप को चुनाती देते हुए कहा गया है-

ओ३म् यो नः पाप्मन्न जहासि तमु त्वा जहिमो वयम्।
पथामनु व्यावर्तनेऽन्यं पाप्मानु पद्यताम्।।
(अथर्व ६-२६-२)

अर्थात् हे पाप! यदि तू हमें नहीं छोड़ता है, तो हम ही तुझे छोड़ देते हैं। जैसे देव बुढ़ापे से तथा अग्नि अदान से दूर रहती है, वैसे ही मैं पाप से दूर रहूँ। यहाँ पर कितनी सुन्दर उपमा दी गई है। वेद में अन्यत्र भी पापों से बचने के बहुत से सुन्दर एवं सार्थक उपाय बताए गए हैं, जिनमें से कुछ की चर्चा करते हैं-

१. दृढ़ इच्छा अर्थात् संकल्प- दृढ़ इच्छा तथा हार्दिक संकल्प के समक्ष कोई भी पाप-वृत्ति एक क्षण भर के लिए भी नहीं ठहर सकती है। वेद में संकल्पशक्ति को चित्त की माता कहा है, जो हमारे मन में ही प्रतिष्ठित है। यदि हम इस संकल्प शक्ति को एक ही केन्द्र-बिन्दु पर लगाने का अभ्यस्त बना लें, तो अपने अन्तःशत्रुओं का नाश करके पापों से बच सकते हैं। कामनाएं दो ही प्रकार की होती हैं- भद्र और अभद्र। संकल्प-शक्ति से हम केवल भद्र ही कामनाओं को उठाने की सामर्थ्य प्रापत कर सकते हैं महर्षि व्यास जी कहते हैं (यो.द. १-१२)- 'चित्तनदी नामोभयतो वाहिनी, वहति कल्याणाय च वहति पापाय च।' यह चित्त की नदी एक है, जो दो ओर बहती है- कल्याण की ओर और पाप की ओर। संकल्प-शक्ति के द्वारा हम अपनी वृत्ति को कल्याणमार्ग पर लगा सकते हैं...।

२. यज्ञ एवं सत्यसंकल्प- हमारा संकल्प सत्य से परिपूर्ण होना चाहिए। यह तभी हो सकेगा, जब हम अपने जीवन को यज्ञमयी भावना से परिपूर्ण बनाऐंगे।

स्वयं को देवपूजन, संगतीकरण और दान से सर्वदा जोड़े रहें। वेद कहता है- "मैं किसी भी पापकर्म को न करूँ- ऐसा सत्य-संक्लपशील व्यक्ति 'देवसंरक्षण' में आ जाता है।''

३. पापों में दोषदर्शन- जब तक हम पापों में दोषदर्शन नहीं करेंगे, तब तक उनसे बचना कठिन हो जाता है। प्रतिक्षण गहराई से चिन्तन करना चाहिए कि क्या ये पाप-कर्म मुझे सुख दे सकेंगे, समृद्धि दे सकेंगे, शान्ति दे सकेंगे, आत्मिक आनन्द दे सकेंगे? जब बार-बार इस प्रकार का चिन्तन करेंगे, तो अपनी आत्मा से ही आवाज आएगी कि यह सब तो नहीं, बल्कि पाप-कर्मों से अन्ततः दुःख ही दुःख प्राप्त होंगे, अशान्ति ही मिलेगी, अपयश ही मिलेगा...।

४. वेदोपदेश, आप्तपुरुषों का संग- जो व्यक्ति प्रमादरहित होकर वेद-स्वाध्याय में लगा रहता है तथा निरन्तर आप्तपुरुषों की संगति में रहता है, वह भी पाप-कर्मों से बच जाता है।

५. सात्विक भोजन- (यजु० ८-१३) में देवों, मनुष्यों, माता-पिता और आत्मा तथा अन्य समस्त पापों से बचने के लिए सात्विक भोजन पर बल दिया गया है क्योंकि हम जैसा अन्न ग्रहण करेंगे, वैसी ही हमारे मन-चित्त की वृत्तियाँ होंगी, जिनके कारण हम पाप या पुण्य कर्म करते हैं।

६. पाप-वृत्ति को वशीभूत करना- अन्ततः जीवन के उत्थान या पतन का उत्तरदायी स्वयं व्यक्ति ही है अतः किन्हीं भी उपायों से सदा जीवन निर्माण में लगे रहना चाहिए। उस में से एक उपाय यह भी है कि स्वयं ही अपनी पाप-वृत्ति से बातचीत करें और उस वार्तालाप से किसी निर्णय पर पहुँचें। उसे सुविचार दें... उस पाप-वृत्ति से ही अनुनय विनय करें कि चल अब हम पुण्यकर्म ही करें... इस प्रकार समझा-बुझाकर उसे भद्रता से भरें... उसे प्रेयमार्ग से श्रेयमार्ग की ओर ले जाने का प्रयास करें...।

७. ब्रह्मोपासना- वेद में बहुत ही सुन्दर चर्चा आई है, जहाँ कहा गया है कि (अथर्व० १०-१-१३) जैसे वायु भूमि से धूलि को तथा अन्तरिक्ष से मेघ को विच्युत कर देता है, वैसे ही ब्रह्म द्वारा धकेला हुआ पाप मुझसे दूर हट जाता है... वेद में अन्यत्र इस वरुण से तीन पाशों से मुक्त करने की प्रार्थना की गई है-

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।

अथा वयमादित्य व्रते तवानागसोऽअदितये स्याम।। (ऋ. १-२४-१५, यजु. १२-१२, अथर्व. ७-८३-३, सा.पू.६-३-१०) मन्त्र में **अनागसः** पापों से मुक्त होने तथा **अदितये**- पूर्ण स्वस्थतता एवं मोक्ष हेतु कहा गया है कि

१. प्रथम बन्धन उत्तम बन्धन अर्थात् ऊपर का बन्धन है- कारण शरीर का, द्यौ में अर्थात् हमारी बुद्धि का, सत्वगुण का बन्धन है,

२. दूसरा मध्यम बन्धन है- राजसिकता का जिससे हमारे मन और प्राण बंधे हुए हैं यह रज और सूक्षम शरीर का बन्धन है, कर्त्तापन के बन्धन में बान्धता है- रजः कर्मणि भारत। हम निष्काम कर्म की ओर बढ़ें,

३. तीसरा अधम बन्धन है, नाभि से नीचे स्थूल शरीर और तामसिकता का बन्धन। उत्तम बन्धन सच्चे ज्ञान के अभाव में है, मध्यम-राग-द्वेष, काम-क्रोध आदि के कारण और अधम-शरीर की सीमा में रहकर भोग भोगने आदि के कारण तथा आलस्य एवं प्रमादादि के कारण...। प्रभु से इन बन्धनों से छुड़ाने की प्रार्थना की गई है अर्थात् प्रार्थना को सफलीभूत देखने के लिए हमें स्वयं ही इन बन्धनों को काटने की आवश्यकता है, ताकि हम सब प्रकार के पाप-कर्मों से बच सकें।

यजुर्वेद में (यजु० ३-४८) देवकृतं एनः- देवताओं के विषय में किए गए पापों को 'देवैः' दिव्य गुणों के उत्पादन के द्वारा, (यजु० ३-४८) **मर्त्यकृतं एनः**- मनुष्यों के विषय में किए गए पाप को 'मर्त्यैः' अर्थात् मरण-धर्मा शरीर से दूर करूँ। इस शरीर के द्वारा परोपकारादि करके दूर करूँ। इसी मन्त्र में कहा गया है कि प्रभु हमें हिंसारूपी पाप से बचाएं, हमारे कर्म हिंसादि से रहित हों..., अन्यत्र कहा है (यजु० ३-४५) **यद् ग्रामे यदरण्ये यत् सभायां यदिन्द्रिये...** जो पाप गाँव आदि के विषय में, जो पाप वन के विषय में, जो पाप सभा में करते हैं, जो पाप इन्द्रियों के विषय में करते हैं- इन समस्त पापों को हम **'अवयजामहे'** यज्ञ के द्वारा दूर कर सकते हैं...।

❑❑

रोमा रौलां की दृष्टि में महर्षि दयानन्द और रामकृष्ण परमहंस
(लेखक- प्रो. भवानीलाल भारतीय, प्रस्तुति- भावेश मेरजा)

(स्रोतः-'आर्यजगत्'जालन्धर का ऋषिनिर्वाण/दीपावली विशेषांक, २७ अक्टूबर-१९६२, पृ०-१४-१७, प्रस्तुति : भावेश मेरजा) सुप्रसिद्ध फ्रैंच विद्वान् रौमां रौलां ने सुप्रसिद्ध बंगाली सन्त रामकृष्ण परमहंस का एक जीवन चरित फ्रैंच भाषा में लिखा है, जिसका अंग्रेजी अनुवाद रामकृष्ण मिशन के अद्वैत आश्रम मायावती, अल्मोड़ा (हिमालय) से प्रकाशित हो चुका है। लेखक ने रामकृष्ण के चरित का निरूपण करने से पूर्व उन्नीसवीं शताब्दी के धार्मिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण के आन्दोलन का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया है, जो उक्त ग्रन्थ के Builders of Unity 'एकता के निर्माता' शीर्षक अध्याय के अन्तर्गत है। इसमें राजा राम मोहन राय, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, केशव चन्द्र सेन और स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों और प्रवृत्तियों का अत्यन्त विषद और मौलिक विवेचन किया गया है। उपर्युक्त ब्राह्मसमाज के तीन नेताओं में समाज के संस्थापक राजा राम मोहन राय को छोड़ कर शेष दोनों रामकृष्ण परमहंस के समकालीन थे। स्वामी दयानन्द भी उस समय के ही महापुरुष हैं। केशव चन्द्र सेन और स्वामी दयानन्द की भेंट कलकत्ता में हुई। केशव बाबू अपने जीवन के अन्तिम भाग में रामष्कृष्ण परमहंस से भी अत्याधिक प्रभावित हो गये थे, जिसके फलस्वरूप उन्होंने ब्राह्म समाज के अनेक सिद्धान्तों को तिलांजलि देकर वैष्णव भक्तिवाद को स्वीकार कर लिया था।

इसी पुस्तक के आगामी अध्याय Ramakrishna and the great shepherds में रौमां रौलां ने परमहंस जी की केशव, दयानन्द आदि सुधरक महापुरुषों के प्रति अपनी व्यक्तिगत सम्मति और भावना का उल्लेख किया है। इस अध्याय में स्वामी दयानन्द के प्रति रामकृष्ण की जो सम्मति रौमां रौलां ने व्यक्त की है, वह हमें नितान्त एकांगी, पक्षपातपूर्ण और अनुचित प्रतीत होती है। प्रस्तुत पंक्तियों में उसी पर विचार करने का यत्न किया जायेगा।

रौमां रौलां ने इस प्रसंग के प्रारम्भ में ही लिखा है- 'Dayananda was summed up, judged and condemned as of less worth still.' (4th Impression, 1947, p. 163) अर्थात् रामकृष्ण ने दयानन्द के सिद्धान्तों को संक्षिप्त रूप से जाना, उनके विषय में निर्णय किया और उन्हें अत्यन्त कम महत्व का जान कर छोड़ दिया। आगे रौमां रौलां लिखते हैं- 'It must be admitted that when the two men met at the end of 1873, the Arya Samaj had not yet been founded and the reformer was still in the midst of his career.' (ibit) अर्थात् जब १८७३ के अन्त में रामकृष्ण और दयानन्द की भेंट हुई, उस समय तक आर्य समाज की स्थापना नहीं हुई थी और सुधारक दयानन्द के जीवन का मध्याह्न था। यहाँ तक तो कोई आपत्तिजनक बात नहीं है।

आगे वे लिखते हैं- 'When Ramakrishna examined him, he found in him "a little power," by which he meant, "real contact with the Divine." (pp. 163-164) अर्थात् जब रामकृष्ण ने दयानन्द की परीक्षा की तो उसमें उन्हें 'कम शक्ति' प्रतीत हुई, जिससे उनका अभिप्राय ईश्वर से वास्तविक सम्पर्क था।

हम यह समझने में असमर्थ हैं कि रामकृष्ण या कोई भी अन्य व्यक्ति क्या किसी व्यक्ति की परीक्षा कर यह जान सकता है कि इसका ईश्वर से अधिक या कम सम्पर्क है। वह कौन सी कसौटी है कि जिससे यह बात जानी जा सकती है कि अमुक पुरुष का भगवदीय सम्बन्ध इस स्तर का है।

पाद-टिप्पणी में लिखा गया है- 'He recognised in him also this characteristic redness of the breast.' अर्थात् रामकृष्ण ने दयानन्द के सीने में एक विशिष्ट लालिमा देखी। (जो उनकी यौगिक शक्ति की द्योतक

थी) क्या सीना लाल होना किसी व्यक्ति में आध्यात्मिक शक्ति की विद्यमानता सूचित करता है? कोई योगविद्या से परिचय रखने वाला व्यक्ति ही इस पर प्रकाश डाल सकता है।

आगे रौमां रौलां रामकृष्ण का दयानन्द के प्रति मत इन शब्दों में व्यक्त करते हैं-

'But the tortured and turturing character, the bellicose athleticism of the champion of the Vedas, his feverish insistence that he alone was in the right, and therefore had the right to impose his will, were all blots on his mission in Ramakrishna's eyes.' (ibid) अर्थात् दयानन्द का अन्यों को पीड़ित करने का स्वभाव, वेदों के इस समर्थक का अन्यों के प्रति युयुत्सु भाव, उसका इस बात पर अत्याधिक आग्रह कि अकेले वही सही है और इसलिए उन्हें अपनी इच्छाओं को दूसरे पर थोपने का अधिकार है, रामकृष्ण की सम्मति में दयानन्द के उद्देश्य पर ये ही सब बातें कलंक के तुल्य थीं।

हम रौमां रौलां की उपयुक्त धारणा से किसी भी प्रकार सहमत नहीं हो सकते। दयानन्द ने अपने मत को मनवाने के लिए न तो किसी को कष्ट दिया और न पीड़ित ही किया। वेदों का वह उग्र समर्थक अवश्य था, परन्तु 'Back to the Vedas' का नारा लगाने का भी एक महत्वपूर्ण कारण था। दयानन्द यह अनुभव कर चुके थे कि भारत का धर्म मूलतः वेदों पर ही आधारित है, अतः जब तक धर्म के इस आदि स्रोत की ओर भारत के जनमानस को उन्मुख नहीं किया जाएगा, तब तक न तो वास्तविक धर्म की ही प्रतिष्ठा हो सकती और न उसे सुदृढ़ ही बनाया जा सकता है। सम्भवतः स्वामी जी द्वारा किए गए अन्य मत-मतान्तरों के खण्डन-मण्डन और उनके शास्त्रार्थों को देख कर ही रौमा रौलां ने इसे उनका युयुत्सु भाव (athleticism) कहा है, परन्तु स्वामी जी की इन प्रवृत्तियों में कहीं भी अपने विरोधी को हानि पहुँचाने, उसे नीचा दिखाने का अथवा पराजित करने की प्रवृत्ति नहीं थी। अतः उसकी उपर्युक्त आलोचना भ्रान्तिपूर्ण धारणाओं पर आधारित है। न तो स्वामी दयानन्द ने यही कहा है कि वे अकेले ही सत्य हैं और न उन्होंने अपनी बातों को मनवाने का ही आग्रह किया है। इसक विपरीत वे तो बार-बार यही कहते रहे कि उनका अपना निज का कुछ भी मत नहीं है। वे उन्हीं सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं, जो ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्त सभी ऋषि मुनियों को मान्य रहे हैं और जिन्हें सभी शास्त्रों की सहमति प्राप्त है। जहाँ तक उनके अपने मत का प्रश्न है, वे यह स्पष्ट कर देते हैं कि उसे भी अन्धविश्वास युक्त होकर न माना जाए। बल्कि लोग युक्ति और तर्क की कसौटी पर उसे कसें, यदि उसमें सत्य हो तो स्वीकार करें, अन्यथा नहीं। मेरी समझ में विश्व के सभी महापुरुषों का अपने मत के प्रति यही दृष्टिकोण रहा है। स्वामी दयानन्द ने भी आग्रहपूर्वक अपनी बात नहीं मनवाई।

हमारा निवेदन है कि यदि स्वामी दयानन्द ने शास्त्रार्थों और विवादों में भाग लिया, तो क्या बुरा किया? उस समय हिन्दू जाति की जो अवस्था थी और शास्त्रों के अर्थों को लेकर जो अनाचार हो रहा था, उनको देखते हुए शास्त्रों के सत्यार्थ का प्रचार करना अत्यन्त आवश्यक था और यही दयानन्द ने किया, परन्तु स्वयं शास्त्र ज्ञान से विहीन रामकृष्ण इस कार्य के महत्व को न समझे, तो इसमें दोष किसका? जहाँ तक शास्त्रों के अर्थों को तोड़ने-मरोड़ने और उनके अर्थों को बदलने का प्रश्न है, यह नया आक्षेप नहीं है। जब-जब स्वामी जी का वेदार्थ वेद-भाष्य के रूप में पौर्वात्य और पाश्चात्य विद्वानों के समझ आया तब-तब उन्होंने यही कहा कि या शास्त्रों के वास्तविक अर्थ को स्वेच्छानुसार परिवर्तित करने का यत्न है। स्वामी जी ने स्वयं अपने जीवन काल में ही इस आक्षेप का समाधान करने की चेष्टा की थी। उन्होंने अपने अर्थों को ब्राह्मण ग्रन्थों, निरुक्त, व्याकरण आदि के आधार पर सिद्ध ही नहीं किया बल्कि यह भी कहा कि मध्यकालीन भाष्यकारों ने जो शास्त्र के अभिप्राय को उल्टा कर अपने-अपने संकीर्ण सम्प्रदायों के मतानुसार

शेष पृष्ठ २७ पर

निष्काम भाव से कर्मरत रहने का नाम ही योग है

(विवेक प्रिय आर्य,मथुरा मो0:-09719910557)

हम अपने बनाए मंदिरों को साफ-सुथरा रखते हैं, उनमें धूप-दीप जलाते हैं, उन्हें सुगंधित रखते हैं। लेकिन कैसा आश्चर्य है कि ईश्वर की बनायी **"अष्टचक्रा नव द्वारा देवानां पुरयोध्या"** अर्थात् आठ चक्र और नौ दरवाजों वाली अयोध्या नगरी में यानी अपने शरीर रूपी मानव मंदिर में शराब, मांस, अंडे, भांग, बीड़ी, सिगरेट का धुआं सब कुछ डालते हैं। जीवन कला के अभ्यासी को आहार शुद्धि का विचार करते हुए यह भी ध्यान रखना है कि हमारी कमाई भी शुद्ध और सात्विक हो, उसमें कर्मचारियों का रक्त नहीं सना हो।

सामान्यतया समझा जाता है कि योग का अर्थ अग्नि या सूर्य के समक्ष महीनों, वर्षों तपना नहीं होता। क्योंकि यदि तपना ही होता तो मोक्ष का अधिकारी पतंगा होता, जो दीपक पर अपने को स्वाहा कर देता है। न जल में वर्षों खड़े होने पर मोक्ष मिलता है, क्योंकि बगुला घंटों पानी में ध्यानमग्न खड़ा रहता है और मछली तो जल में ही उत्पन्न होती है तथा जीवन पर्यंत जल में रहकर अंत में जल में समाधि लेती है। इसी प्रकार ठंडेश्वरी या मौनी बाबा का क्षणिक नाटक है। प्रदर्शन मान-प्रतिष्ठा प्राप्त करने तथा कुछ कमाने का चोखा धंधा है। **योग का वास्तविक अर्थ है कि अपने वर्णाश्रम के अनुसार निष्काम भाव से कर्मरत रहना, संयम की अग्नि में इंद्रियों को तपाकर निर्विषय कर देना और जीवन संग्राम के समस्त दुःखों को प्रभु प्रसाद समझकर उनसे संपूर्ण पुरुषार्थ के साथ विशेष रूप में जूझते रहना।** प्रायः समझा जाता है कि **"लोकोयं कर्म बंधनः"** अर्थात् कर्म लोक बंधन का कारण है। लेकिन योग इसके विपरीत हमें सिखाता है कि कर्म ही बंधन मुक्ति का साधन है। अब प्रश्न है कि कौन सा कर्म है, जो योग बन गया है, यज्ञ बन गया है कर्म में यह कौशल कि वह यज्ञ बन जाये, यही योग है और यही जीवन कला है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं - **"योगः कर्मसु कौशलम्"** अर्थात् कर्म में कौशल उसे यज्ञमय बना देता है, प्रभु से वियोग नहीं योग कराता है अथवा मिलाता है। इस प्रकार ज्ञानपूर्वक किए गए कर्म जब यज्ञ का रूप लेते हैं, तो वही उपासना बन जाते हैं।

ज्ञान, कर्म और उपासना का यह त्रिवेणी संगम मानव का मोक्ष तीर्थ बन जाता है। कानों से हम भद्र सुनें, आँखों से भद्र देखें, धरती को मधुरता से सींचने के लिए शहद जैसा मीठा और हितकारी भद्र वचन कहें। मस्तिष्क से भद्र चिंतन, हाथों से भद्र कर्म और पाँवों से भद्र चलन करें, तब होगा हमारा आत्मयज्ञ। इसी को वेदमाता ने षड् योग भी कहा है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में इसे समत्व योग कहा है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन! संसार के सारे दुःख संग के कारण हैं। योग और कुछ नहीं है, बस कर्म करते हुए सिद्धि-असिद्धि में समभाव बनाए रखना, परमात्मा के साथ युक्त रहना, अपने को उसी के हाथों से देना ही योग है। वही हमारे भीतर के शत्रु काम, क्रोध, लालच, लालसा, झूठ बेईमानी दुराचार आदि हैं। मनुष्य कितने ही आविष्कार क्यों न कर ले, कितना ही बड़ा साम्राज्य क्यों न खड़ा कर ले लेकिन जब तक उसके भीतर ये शत्रु बैठे हैं, तब तक बाहर की जीत, जीत नहीं हार है। क्योंकि जितना ही वह लालच और लालसा, झूठ और बेईमानी से बाहर का सामान जुटाता जाएगा उतना ही उसका लालच, उसकी लालसा, उसकी बेईमानी, उसकी दूसरों का खून पीने की प्यास बढ़ती जाएगी। जीत तो तभी होगी, जब जिस प्यास को बुझाने तुम निकले हो, वह प्यास बुझ जायेगी। क्या सिकंदर की

शेष पृष्ठ २७ पर

संत रविदास और इस्लाम

(डॉ. विवेक आर्य, मो0-०९३१०६७९०९०)

सहारनपुर में दलितों और ठाकुर राजपूतों का विवाद का समाचार मिल रहा है। कभी दलित कहते हैं कि हम इस्लाम स्वीकार कर लेंगे, कभी ठाकुर कहते हैं कि हम इस्लाम स्वीकार कर लें। इस्लाम स्वीकार करने से जातिवाद की समस्या समाप्त हो जाती, तब तो दुनिया के सभी इस्लामिक देश जन्नत के समान होते। मगर सत्य भिन्न है। शिया-सुन्नी, अहमदी-देवबंदी, अशरफ-अजलफ, वहाबी-सूफी, सैयद-कुरैशी और न जाने क्या क्या के नाम पर मुस्लिम समाज न केवल विभाजित है, अपितु एक- दूसरे के खून के प्यासे भी बने हुए हैं। भारत में जातिवाद की सामाजिक समस्या का राजनीतिकरण हो गया है। यह कटु सत्य है कि भारत में राजनीति ने जातिवाद की खाई को अधिक गहरा और चौड़ा ही किया है। जय भीम का नारा लगाने वाले दलित भाइयों को आज के कुछ राजनेता कठपुतली के समान प्रयोग कर रहे हैं। यह मानसिक गुलामी के लक्षण हैं। दलित-मुस्लिम गठजोड़ के रूप में बहकाना भी इसी कड़ी का भाग है। दलित समाज में संत रविदास का नाम प्रमुख समाज सुधारकों के रूप में स्मरण किया जाता है। आप जाटव या चमार कुल से सम्बंधित माने जाते थे। **चमार शब्द चंवर का अपभ्रंश है।**

चर्ममारी राजवंशी का उल्लेख महाभारत जैसे प्राचीन भारतीय वांग्मय में मिलता है। प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० विजय सोनकर शास्त्री ने इस विषय पर गहन शोध कर चर्ममारी राजवंश के इतिहास पर पुस्तक लिखी है। इसी तरह चमार शब्द से मिलते-जुलते शब्द चंवर वंश के क्षत्रियों के बारे में कर्नल टाड ने अपनी पुस्तक 'राजस्थान का इतिहास' में लिखा है। चंवर राजवंश का शासन पश्चिमी भारत पर रहा है। इसकी शाखाएं मेवाड़ के प्रतापी सम्राट महाराज बाप्पा रावल के वंश से मिलती हैं। संत रविदास जी महाराज लम्बे समय तक चित्तौड़ के दुर्ग में महाराणा सांगा के गुरु के रूप में रहे हैं। संत रविदास जी महाराज के महान, प्रभावी व्यक्तित्व के कारण बड़ी संख्या में लोग इनके शिष्य बने। आज भी इस क्षेत्र में बड़ी संख्या में रविदासी पाये जाते हैं।

उस काल का मुस्लिम सुल्तान सिकंदर लोधी अन्य किसी भी सामान्य मुस्लिम शासक की तरह भारत के हिन्दुओं को मुसलमान बनाने की उधेड़बुन में लगा रहता था। इन सभी आक्रमणकारियों की दृष्टि गाजी उपाधि पर रहती थी। सुल्तान सिंकदर लोधी ने संत रविदास जी महाराज को मुसलमान बनाने की जुगत में अपने मुल्लाओं को लगाया। जनश्रुति है कि वो मुल्ला संत रविदास जी महाराज से प्रभावित हो कर स्वयं उनके शिष्य बन गए और एक तो रामदास नाम रख कर हिन्दू हो गया। **सिकंदर लाधी अपने षड्यंत्र की यह दुर्गति होने पर चिढ़ गया और उसने संत रविदास जी को बंदी बना लिया और उनके अनुयायियों को हिन्दुओं में सदैव से निषिद्ध खाल उतारने, चमड़ा कमाने, जूते बनाने के काम में लगाया। इसी दुष्ट ने चंवर वंश के क्षत्रियों को अपमानित करने के लिए नाम बिगाड कऱ चमार कह कर सम्बोधित किया।** चमार शब्द का पहला प्रयोग यहीं से शुरू हुआ। संत रविदास जी महाराज की ये पंक्तियाँ सिकंदर लोधी के अत्याचार का वर्णन करती हैं।

वेद धर्म सबसे बड़ा, अनुपम सच्चा ज्ञान
फिर मैं क्यों छोड़ूँ, इसे पढ़ लूँ झूठ कुरान

वेद धर्म छोड़ूँ नहीं कोसिस करो हजार
तिल-तिल काटो चाही गोदो अंग कटार

चंवर वंश के क्षत्रिय संत रविदास जी के बंदी बनाने का समाचार मिलने पर दिल्ली पर चढ़ दौड़े और दिल्ली की नाकाबंदी कर ली। विवश हो कर सुल्तान सिकंदर लोधी को संत रविदास जी को छोड़ना पड़ा। इस संघर्ष का जिक्र इतिहास की पुस्तकों में नहीं है मगर संत रविदास जी के ग्रन्थ रविदास रामायण की यह पंक्तियाँ सत्य उद्घाटित करती हैं :-

बादशाह ने वचन उचारा। मत प्यादरा इसलाम हमारा।।
खंडन करै उसे रविदासा। उसे करौ प्राण कौ नाशा।।
जब तक राम नाम रट लावे। दाना पानी यह नहीं पावे।।
जब इसलाम धर्म स्वीकारे। मुख से कलमा आप उचारै।।
पढ़े नमाज जभी चितलाई। दाना पानी तक यह पाई।।

जैसे उस काल में इस्लामिक शासक हिंदुओं को मुसलमान बनाने के लिए हर संभव प्रयास करते रहते थे, वैसे ही आज भी कर रहे हैं। उस काल में दलितों के प्रेरणास्रोत संत रविदास सरीखे महान चिंतक थे। जिन्हें अपने प्राण न्योछावर करना स्वीकार था, मगर वेदों को त्याग कर कुरान पढ़ना स्वीकार नहीं था।

मगर इसके ठीक विपरीत आज के दलित राजनेता अपने तुच्छ लाभ के लिए अपने पूर्वजों की संस्कृति और तपस्या की अनदेखी कर रहे हैं।

दलित समाज के कुछ राजनेता जिनका काम ही समाज के छोटे-छोटे खंड बाँट कर अपनी दुकान चलाना है, अपने हित के लिए हिन्दू समाज के टुकड़े-टुकड़े करने का प्रयास कर रहे हैं।

आइये, डॉ० अम्बेडकर की सुनें, जिन्होंने अनेक प्रलोभन के बाद भी इस्लाम और ईसाइयत को स्वीकार नहीं किया।

❑❑

पृष्ठ ६ का शेष

चतुर्थ, उपनिष्कार आगे स्वयं कहते हैं कि, क्योंकि अग्नि, वायु और इन्द्र ने ब्रह्म को निकट से स्पर्श किया और उसको सबसे पहले जाना, इसलिए अन्य देवों की अपेक्षा वे ही अधिक महान् हैं। इन्द्र किस प्रकार अधिक महान् है, वह तो हमने ऊपर देखा। पुनः, इससे भी अगला श्लोक कहता है कि, वस्तुतः इन्द्र अग्नि और वायु से भी महान् है क्योंकि उसी ने सबसे पहले ब्रह्म को निकट से छुआ और उसी ने उसको सबसे पहले पहचाना कि यह ब्रह्म है। यह तो स्पष्ट ही है, परन्तु आकाश, जल और पृथिवी की तुलना में अग्नि और वायु क्यों अधिक उत्कृष्ट हैं, यह अन्वेषणीय है। सम्भव है, **अग्नि** प्रकाश, ऊर्जा और ज्ञान का प्रतीक होने से, और **वायु** प्राण और बल का प्रतीक होने से इन्हें ही मुख्य माना गया हो। कथा का सन्देश पढ़ें, तो वहाँ बताया गया कि अग्नि उत्पन्न-मात्र पदार्थों में स्थित है और वह पृथिवी पर सब कुछ जला सकती है। वायु इतनी बलवान् है कि पृथिवी पर सब कुछ उड़ा सकती है। तथापि आकाश, जल और पृथिवी भी अपने दिव्य गुणों के कारण जीवन के लिए अत्यावश्यक हैं। इसलिए इस कथन का तात्पर्य स्पष्ट नहीं है।

उपनिषदों में प्रायः आलंकारिक कथाएं पायी जाती हैं। अनेकत्र इनके अर्थ लुप्त भी हो गए हैं। परन्तु उससे अधिक विनाशकारक है गलत अर्थ। इस कथा को भी पौराणिकों ने अपने अर्थों से दूषित करने का प्रयास किया है, परन्तु आचार्य राजवीर शास्त्री प्रभृति आर्यसमाजी विद्वानों ने वैदिक अर्थों को पुनः स्थापित किया है। इन अर्थों का प्रचार सर्वत्र करना अब प्रत्येक आर्यसमाजी कार्यकर्ता का कर्त्तव्य है। नहीं तो, दूषित अर्थ जड़ पकड़ लेंगे और लोगों के मन में घर कर लेंगे। इस अनर्थ को रोका जाना चाहिए।

❑❑

भारत में इतने गद्दार क्यों

(सेवा० मेजर जनरल मृणाल सुमन,ए०वी०एस०एम०,वी०एस०एम०)

स्कूल में भारतीय इतिहास पढ़ाते समय हमसे बारम्बार कहा जाता था कि विदेशी आक्रन्ताओं ने भारतीयों में फूट डालकर भारत पर प्रभुत्व स्थापित किया। उनका चित्रण कुटिल षड़यन्त्रकारियों के रूप में किया जाता था, जो सरल, विश्वासपूर्ण, भोले- भाले भारतीयों का शोषण करते थे। बहुत बाद में हमें इस मान्यता के खोखलेपुन की अनुभूति होती थी। सच तो यह है कि हम ऐसे गद्दारों के दलों को उत्पन्न करने में कुशल हैं, जो भारत के विनाश पर उल्लासित होते हैं। विदेशी आक्रांताओं की हर विजय उनके स्थानीय सहायकों के सहयोग द्वारा सम्भव हुई, जिन्होंने स्थानीय राजाओं से बदला लेने के लिए या कुटिल लाभ के लिए उनसे विश्वासघात किया। कोई भी दुर्ग किसी विश्वासपात्र मन्त्री या सेनापति की गद्दारी के बिना विजित नहीं हुआ।

दुर्भाग्यवश सदियों की गुलामी से हमने कुछ नहीं सीखा। आज भी हम झुंड के झुंड ऐसे व्यक्तियों को जन्म दे रहे हैं, जो अपने तुच्छ व्यक्तिगत लाभ के लिए किसी भी हद तक झुक सकते हैं, यहाँ तक कि राष्ट्रीय सुरक्षा को भी संकट में डाल सकते हैं। हमारे नेताओं, मीडिया और बुद्धिजीवियों का एकमात्र एजेंडा यही प्रतीत होता है कि किस प्रकार ऐसे-ऐसे मुद्दे उठाए जायें, जो राष्ट्र को विभाजित करें और छोटी-छोटी बातों को लेकर झगड़ने की प्रवृत्ति को तथा आन्तरिक विरोध को उकसायें और इस प्रकार प्रगति में बाधक बनकर देश को बदनाम करें। वे भारत के विकास से घृणा करते हैं। मैं स्पष्ट करता हूँ -

हमारे नेता ही सारी अलगाववादी प्रवृत्तियों के स्रोत हैं। उनके लिए वोट की राजनीति सबसे प्रमुख हैं। वोट पाने की आशा से बांगलादेश से गैरकानूनी ढंग से भारत आने वाले बांगलादेशियों की सहायता करने में कितना खतरा है, वह समझने/समझाने के लिए किसी दिव्यदृष्टि की आवश्यकता नहीं है। किन्तु बेईमान राजनीतिज्ञ बेफिक्री से ऐसा कर रहे हैं। शर्म से सिर झुक जाता है। जब राजनीतिक नेता एक ऐसे अपराध ी छात्र नेता की सहायता करते हैं, जो भारत का विनाश करना चाहता है।

शहीद भगतसिंह से उसकी तुलना से बढ़कर विश्वासघात और क्या हो सकता है। शायद भारत ही एकमात्र ऐसा देश है, जिसने ऐसे बदनाम गृहमन्त्री बनायें हैं, जो देश के अपमान में गौरव का अनुभव करते हैं। एक ने तो अपने दल के नेता को प्रसन्न करने के लिए 'भगवा आतंकवाद' का एक सिद्धांत कहा। ऐसा करके उन्होंने पाकिस्तान को झूठे प्रचार के लिए एक हथियार दे दिया। एक अन्य गृहमन्त्री ने एक अकल्पनीय कार्य किया और एक आतंकवादी के निर्दोष होने का झूठा हलफनामा दे दिया, उनका उद्देश्य विपक्ष के नेताओं को एक झूठे मुकदमे में फंसाना था। इस प्रक्रिया में भारत के गुप्तचर विभाग को अत्यधिक क्षति पहुँची।

जब एक नेता घोषित करता है ''आज देश में एक गाय होना, एक मुसलमान होने से अधिक सुरक्षित है।'', तब वह सारे देश को लज्जित करता है। संसार का मीडिया इस प्रकार की खबरों को बहुत धूर्ततापूर्ण प्रसन्नता से घोषित करता है। भारत की छवि पर भीषण आघात होता है तथा सरकार के विरुद्ध छोटी-मोटी जीत के लिए वह विरोधी शक्तियों को दुष्प्रचार का मौका दे देता है। हाल ही में एक प्रसिद्ध एडवोकेट और पूर्व कानून मन्त्री ने एक टी.वी. चैनल पर कहा कि देश के विनाश के नारे लगाना संविधान में निषिद्ध नहीं है। उनके अनुसार अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का सर्वाधिक महत्व है, यहाँ तक कि देश से पृथक् होने की माँग भी

न्यायोचित है। जैसे-जैसे साक्षात्कार आगे बढ़ता गया। श्रोता उनके विकृत तर्कों से न केवल स्तम्भित हुए, वरन् उस सीनाजोरी से, जिससे वे तर्क कर रहे थे, स्तब्ध हो गये। भारत के अस्तित्व के लिए उन्हें कोई चिन्ता नही थी। सुनने वाले को आश्चर्य होता था कि वह किसी भारतीय चैनल को सुन रहा है या पाकिस्तानी चैनल को।

द्वितीय : हमारे मीडिया वाले

उनके विषय में जितना कम कहा जाये, उतना अच्छा है। उनके व्यवहार से लगता है कि उनमें से बहुत से विदेशी हैं और भारत उनके लिए कुछ मायने नहीं रखता। एक शीर्षस्थ मीडिया संगठन ने जनरल परवेज मुशर्रफ सदृश भारत-विद्वेषी और पश्चाताप रहित शत्रु को बुलाया और उसके सामने नत हुए। यह इस बात का प्रमाण था कि पत्रकारिता निर्लज्जता की किस सीमा तक डूब सकती है। कारगिल युद्ध के लिए लांछित करने के स्थान पर उसके साथ एक शान्तिप्रेमी अतिथि के समान व्यवहार किया गया।

हमारा समाचारतन्त्र-चाहे इलैक्ट्रोनिक हो या मुद्रित-कभी भी देश के विषय में किसी सकारात्मक या उत्साहवर्धक समाचार को प्रकाशित नहीं करता। कुरूप भारत (जैसे स्लमडॉग मिलयोनेयर) बिकता है; और प्रगतिशील भारत नहीं। याद करिये कि एक टी.वी. संवाददाता ने, जो अमरीका में मोदी की लोकप्रियता नहीं सह सका, जनसमूह को उत्तेजक प्रश्नों द्वारा उकसाने का प्रयत्न किया। क्योंकि उन्हें भारत का अवमूल्यन करने के लिए धन मिलता है, उनकी प्रशंसा के लिए नहीं। मीडिया के द्वारा अपनी षड़यन्त्रकारी नीति एवं खबरों की विकृत प्रस्तुति के माध्यम से देश की एकता की अपरीमित हानि की जा रही है। हर समाचार को एक धार्मिक या जातिवादी या सिद्धान्तवादी मोड देकर प्रस्तुत किया जाता है, जैसे, ''एक दलित लड़की के साथ दिल्ली की बस में छेड़छाड़।'' (जैसे, दिल्ली की बसों में अन्य महिलाओं के साथ छेड़छाड़ नहीं होती।) या ''चर्च के चौकीदार की हत्या'' (वास्तव में दो सुरक्षाकर्मियों का विवाद हिंसक हो गया था।) या ''मुस्लिम ड्राइवर द्वारा एक लड़का कुचला गया।'' (जैसे इस घटना में मुसलमान होने की कोई संगतता है।) हाल ही में पशुओं की चोरी के एक मामले में, एक प्रमुख समाचार पत्र ने यह अवश्य जोड़ दिया, ''पाँच चोरों में से एक अतीत में एक गौरक्षा दल से जुड़ा था।'' किस प्रकार कुटिलता से चोरी के एक मामले को एक धार्मिक मोड़ दे दिया गया। क्षुद्र तोड़फोड़ करने वाले व्यक्ति को जननेताओं के समान प्रचार क्षेत्र दिया जाता है। कितना कुत्सित था, वो टी.वी. चैनलों द्वारा एक छात्र नेता के साक्षात्कार दिखाना, जिस पर देशद्रोह के आरोप हैं। सबसे खराब था टी.वी. प्रसारकों द्वारा उसके प्रति पक्षपातपूर्ण रवैया, मानों किसी राष्ट्रीय हीरा का यशोगान किया जा रहा हो। और ये साक्षात्कार मुख्य समयों पर प्रसारित किये गये। क्या इन टी.वी. चैनलों ने कभी युद्धवीरों के परिवारों से साक्षात्कार करने का विचार किया? यह सम्भावना भूल जाइये? क्योंकि ऐसा करना भारत के पक्ष में किया गया कार्य होता और भारत-समर्थक कोई भी कार्य इन मीडिया वालों के लिए भ्रष्ट है।

सैनिक और राष्ट्रीय प्रतीक

राष्ट्र का झण्डा, राष्ट्रगान और राष्ट्रीय अभिवादन, एक देश की राष्ट्रीय पहचान और गौरव होते हैं। ये हमारी प्राचीन विरासत, वर्तमान चुनौतियों और भावी अभीप्साओं के प्रतीक हैं। सैनिक के लिए उनकी पवित्रता निर्विवाद है। भारत के हजारों सैनिकों ने दुश्मन के मोर्चे पर तिरंगा फहराने के लिए अपने प्राण देकर सर्वोच्च सम्मान को प्राप्त किया है, जब उनके शव तिरंगे में लपेटकर लाये गए।

राष्ट्रगान के स्वर सुनकर हर सैनिक को रोमांच हो जाता है और उसके प्रभाव से उनके अन्दर एक बिजली सी दौड़ जाती है, उनका प्रत्युत्तर तात्कालिक होता है। जब स्वतंत्रता दिवस या गणतंत्र दिवस के समारोहों में टी.वी. पर राष्ट्रगान बजता है, तब सैनिको अपने घरों में भी सम्मान में सपरिवार खड़े हो जाते हैं।

काशी में छा गयी उदासी

(उपासना जाँगड़ा, आट्टा मो0ः-09991291318)

गुरुवर से ले दीक्षा दयानन्द, गढ़ पाखण्ड का तोड़ चला,
दीपक बन तम से टकराया, था झंझाओं के बीच जला।
जगद्गुरु फिर बनेगा भारत, वैदिक साँचे में होगा ढला,
सुन काशी में छा गयी उदासी, है संन्यासी या कोई बला।।

सामने आने से हर घबराता, न सहे तर्क युक्ति की मार,
काशी नगरी के पण्डे पण्डित, मिलकर करने लगे विचार।
कलेजे हमारे बैठ रहे हैं, सुन शास्त्रार्थ की ललकार,
कीच बीच में फँस गई नैया, अब क्या होगा हे करतार।।

दयानन्द है विद्वान् वेद का, निडर सिंह सम डोलता है,
सभी मतों को समान भाव से, तर्क तुला पर तोलता है।
विरोध भी हम करें कैसे, जब सत्य सत्य सब बोलता है,
पर मूर्तिपूजा का करके खण्डन, विष अमृत में घोलता है।।

ओ३म् नाम का कवच पहन, खण्डन का ले खाण्डा कर में,
तर्क-तीरों की वर्षा कर रहा, योद्धा डटा शास्त्रार्थ समर में।
प्रमाण-सुदर्शन का कर दर्शन, भय जगता है मिथ्या नर में,
बिल्ली को घण्टी बाँधे कौन, हम चिन्तित आज इसी डर में।।

जा काशी नरेश के पास सभी, करने लगे पण्डे वार्तालाप
है विश्वनाथ की नगरी काशी, भक्त करते हैं जिसका जाप।
डूब रही है आज लाज हमारी, निशदिन हरते पर सन्ताप,
काशी-नैया के खिवैया, राजन्! आज बन जाओ आप।।

फँस पण्डों के चक्रव्यूह में, नरेश की मति हुई विपरीत,
शीघ्र करो शास्त्रार्थ विप्रवर, व्यर्थ हो रहे क्यों भयभीत।
षड्यन्त्र कोई रचेंगे ऐसा, निश्चय होगी हमारी जीत,
आप बनो करवाल ढाल मैं, मिल करें दयानन्द को पराजित।।

हर-हर बम-बर करते हुए, मिथ्या विद्या के विद्वान् आए,
कोई पैदल दौड़ लगा रहा, कुछ रथों में श्रीमान् आए।
चेले चेली चँवर डुला रहे, हो गजासीन भगवान् आए,
मजा चखा देंगे दयानन्द को, यह करते हुए ऐलान आए।।

आनन्द बाग में पहुँचे पण्डित, जहाँ ऋषिराज विराज रहे,
मध्यस्थ आसन ग्रहण कर, हो आनन्दित काशीराज रहे।
मूर्तिपूजा रही आदि काल से, क्यों खण्डन कर महाराज रहे,
ऋषि बोले - दो प्रमाण वेद का, जो सबके ही सरताज रहे।।

मौन साध गए ताराचरण जी, काटो तो कहीं खून न पाओ,
विशुद्धानन्द जी आगे बढ़कर, बोले- अब हमसे टकराओ।
शारीरिक सूत्र का है नहीं क्या, लिखा वेद में मूल बतलाओ,
ऋषि बोले- मुख्य विषय छोड़, मत विषयान्तर में पग बढ़ाओ।।

उठा अवसर का लाभ तभी, विशुद्धानन्द ने किया प्रहार,
कंठस्थ नहीं थे वेद यदि तो, क्यों शास्त्रार्थ का किया विचार।
क्या आपको है कंठस्थ सभी, तत्काल उठे ऋषि ललकार,
गर्वित हो विशुद्धानन्द बोले- शास्त्र पढ़े मैंने अनेकों बार।।

कहा ऋषि ने-लक्षण धर्म के, हे विप्रवर! बतला दो आप,
कुछ भी नहीं सूझता था उनको, बैठ गए होकर चुपचाप।
'धृति क्षमा....' सुन ऋषि से, बालशास्त्री बढ़े ले कर में चाप,
लक्षण अधर्म का पूछा उससे, मानो सूँघ गया था साँप।।

पराजय सामने खड़ी देखकर, पण्डित सोचने लगे उपाय,
माधवाचार्य व वामनाचार्य, बालशास्त्री और शिवसहाय।
ताराचरण व विशुद्धानन्द से, सब चिन्तित बैठे हो असहाय,
बोले- 'प्रतिमा' शब्द वेद में, मूर्तिपूजा रहा स्वयं बताय।।

बोले ऋषि- 'प्रतिमा' से नहीं, सिद्ध होती पूजा पाषाणों की,
माधवाचार्य पुनः बोले- क्या, नहीं है चर्चा वेद में पुराणों की?
बोले ऋषि- ब्राह्मण ग्रन्थ हैं ये, लो आओ शरण प्रमाणों की,
भागवतादि नहीं रचे व्यास ने, ये हैं गाथा यवन कुषाणों की।।

'पुराण' इतिहास का भी विशेष, है 'इतिहास पुराण'- बतलाता,
वामनाचार्य ने कहा- वेद में, यह पाठ नहीं कहीं पर पाता।
मिले तो हार हार का पहनो, नहीं तो मेरी हार है ऋषि सुनाता,
ताला लग गया मुँह पर सबके, सभा में छा गया सन्नाटा।।

पूछा ऋषि ने व्याकरण में, कल्म संज्ञा कहाँ स्वीकार हुई?
बालशास्त्री बढ़े आगे, पर पुनः काशी की हार हुई।
थर-थर काँप रहे थे पण्डित, यह हालत क्यों करतार हुई,
विद्वानों की होकर नगरी, क्यों काशी आज लाचार हुई।।

शास्त्रार्थ समर के योद्धा की, पाखण्ड-गढ़ पर तोप चली,
कौन सामना करेगा इसका, हारे एक से एक बली।
कैसा शरारती घुसा उपवन में, है तोड़ रहा कोमल कली,
झुँझलाकर यूँ काशी नरेश ने, सिर खुजलाया आँख मली।।

दो पन्ने निकाल माधवाचार्य, बोले ऋषि की ओर बढ़ाकर,
लिखा है यज्ञ के बाद सुने, यजमान पुराण देखो उठाकर।
पन्ने लेकर लगे पढ़ने ऋषि, उठे पण्डित कोलाहल मचाकर,
बोले- दयानन्द हारा काशी में, जाएगा कैसे प्राण बचाकर।।

ताली पीटकर बोले नरेश भी, उन्नत रहा काशी का भाल,
शास्त्रार्थ शस्त्र समर बना, ऋषि घिरे ज्यों अर्जुन का लाल।
कोई कंकड़ कीचड़ लगा मारने, कोई खुश होता था मिट्टी डाल,
सजग सिपाही रघुनाथ ने, ऋषि को सुरक्षित लिया निकाल।।

पर दुनिया जानती है काशी में, ऋषिवर अनेकों बार गए,
दूसरी बार तो काशी नरेश भी, करने स्वयं सत्कार गए।
छठी बार में मिलकर पण्डित, बता विष्णु अवतार गए,
'राजेश' देश के मिटा क्लेश, ऋषि भवसिन्धु पार गए।।

❑❑

पृष्ठ २० का शेष

प्यास बुझी? क्या नेपोलियन की प्यास बुझी? क्या हिटलर और मुसोलिनी की प्यास बुझी? यह सब अपनी लालसा की प्यास में ही डूब गये। प्रश्न है कि क्या कोई ऐसा रास्ता है, जिससे मनुष्य भीतर के इन शत्रुओं से जीता जा सके। इसका उत्तर भारत संस्कृति के पास है। वह है योगदर्शन के रचयिता पतंजलि मुनि के पाँच यम। अपने तथा मानव समाज के जीवन के भवन को वैदिक संस्कृति के उन पाँच आधार स्तम्भों पर खड़ा कर देना, जिनकी नींव पाताल तक तथा चोटी हिमालय के शिखर तक चली गई है, यह पाँच यम हैं- **अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।** इन्हीं को योग का आधार माना गया है। योग का अर्थ अपने को परमेश्वर से जोड़ना है और इसका साधन प्रभु के मंदिर मानव शरीर की एक-एक इंद्रिय को उपयोगी बनाना है।

❑❑

पृष्ठ १२ का शेष

बेचते हैं, न कहीं सूनागार और मद्य की दुकानें हैं। क्रय विक्रय में कौड़ियों का व्यवहार है। केवल चाण्डाल मछली मारते, मृगया करते और मांस बेचते हैं।" (अनुवादक जगन्मोहन वर्मा, पृ० ६४)

निर्दोष जीवों के विरुद्ध किये जा रहे राक्षसी कर्म (आतंकवाद) से निवृत्त होने की प्रेरणा देते हुए पं० सत्यपाल पथिक जी ने लिखा है-

देख बन्दे तेरी है यही बन्दगी,
तू किसी जीव को भी सताया न कर।
न किसी पे ज़रा सी दया कर सके,
तो जुलम भी किसी पे तू ढाया न कर।।
इन पशु पक्षियों को तू मारा न कर,
मौत के घाट इनको उतारा न कर।
अपनी छः इंच लम्बी जबां के लिए,
बेजबानों पे छुरियां चलाया न कर।।
इन बेचारों ने तेरा बिगाड़ा है क्या,
कोई घरबार तेरा उजाड़ा है क्या?
तू घड़ी दोघड़ी की लहर के लिए,
इन गरीबों के खूं से नहाया न कर।।
निरपराधों को तकलीफ़ देता है क्यों,
जिन्दगी दे सके न तो लेता है क्यों?
जग में इनको भी जीने का अधिकार है,
बेरहम इनका जीवन मिटाया न कर।।
जैसे बच्चे हैं सब लाड़ले आपके,
यह भी वैसे ही प्यारे हैं मां बाप के।
छीने बच्चे किसी के 'पथिक' मार कर,
अपने बच्चों को हरगिज खिलाया न कर।।

❑❑

पृष्ठ १६ का शेष

सीमित कर दिया है उसे पुनः उल्टा कर मैं उनके वास्तविक उदार आशय प्रकट कर रहा हूँ। स्वामी दयानन्द नवीन मत की स्थापना करने के लिए उत्सुक थे, यह तो कोई उनका बड़े से बड़ा विरोधी भी नहीं कह सकता। उन्होंने सथान-स्थान पर यह स्पष्ट कर दिया है कि नवीन मत प्रवर्तन करने का उनका लेश मात्र भी अभिप्राय नहीं है। वे उसी पुरातन वैदिक धर्म के प्रचार के इच्छुक हैं, जो अनादि काल से विश्व का सार्वजनीन मत है। ऐसी स्थिति में उन पर सम्प्रदाय प्रवर्तन का आक्षेप नहीं लगाया जा सकता। रामकृष्ण ने यह भी कहा है कि इस प्रकार की व्यक्तिगत और साँसारिक विजय ईश्वरीय प्रेम की बाधक है। यह व्यक्तिगत विजय तो है ही नहीं। स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों की विजय वैदिक धर्म की विजय है और ईश्वर के अटल नियमों की विजय है। हां, स्वामी जी की यह धारणा अवश्य थी कि सच्चा लोक-कल्याण ही वास्तविक ईश्वरीय प्रेम है।

यह है दयानन्द की उदात्त भावना, उसका प्रचण्ड लोक संग्रह का भाव, उसका विश्वजनीन सिद्धान्त जिसे समझने में न रामकृष्ण ही सफल रहे और न उनके प्रशंसक रौमां रौलां ही।

❑❑

आर./आर. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/६/२०१७
भार- ४० ग्राम

जून 2017

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2015-17
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१५-१७
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2015-17

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

● प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
● विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
● स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में..................
ग्राम..................
डा0..................
जिला..................

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।